चौथी मुट्ठी

लेखक की प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास

बोरीवली से बोरीबन्दर तक (पुरस्कृत)	3 50
कबूतरखाना	2 50
हौलदार	6.00
चिट्ठीरसैन	4 50
किस्सा नर्मदाबेन गगूबाई	2 50
मुख-सरोवर के हस	4 00
चौथी मुट्ठी	3 00
एक मूठ सरसो	—
सातवाँ समुन्दर	—
बारूद और बचुली	—

एकांकी

खाँसी को फाँसी	2 00

अवतार-गाथा

वेला हुई अबेर	3 00

कहानी

मेरी तेतीस कहानियाँ	6 00

आत्माराम एण्ड सस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

CHAUTHI MUTTHI

(A Novel)

by

Shailesh Matiyani

Rs 3 00

प्रकाशक	रामलाल पुरी, सचालक आत्माराम एण्ड सस काश्मीरी गेट, दिल्ली-6
शाखाएँ	हौज खास, नई दिल्ली माई हीरा गेट, जालन्धर चौडा रास्ता, जयपुर बेगमपुल रोड, मेरठ विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ
मूल्य	तीन रुपए
प्रथम सस्करण	1962

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिग प्रेस
दिल्ली

भाई मदनमोहन गोस्वामी को

एक मूठ अक्षर मेरे

ग्रौर चार मूठ ग्रक्षर कौशिला के ग्राँचल के—'चौथी मुट्ठी' लिखने बैठा था, तो बस, इतनी ही पूँजी मेरे पास थी। कौशिला भोटियाधारा तक पहुँच चुकी, तो लगा, कि जिस मोतिमा का पहले उल्लेख-मात्र ही कर पाया था, वह कौशिला से भी दूने-तिगुने वेग से मेरी ग्रोर दौडी चली ग्रा रही है—"ग्ररे, साले ! क्या कौशिला ही लगती है तेरी महतारी ? मोतिमा राँडी किसी की कुछ नही लगती ? कौशिला की व्यथा तुझे घनी लगती है, साले, मोतिमा का दुख-दरद नही दिखता ? कौशिला ने सतान जनमाई है,मोतिमा राँडी की तो टाँग ही नही फटी। ग्ररे भाई ! साथ ले जाने को भी तो कोई लाज-शरम वाली बहू-बेटी चाहिए, ग्रधनगी मोतिमा राँडी को साथ ले जाकर कौन अपना फजीता करवाएगा ?"

ग्रौर मुझे लगा, कि मोतिमा भी मेरी महतारी लगती है। ग्रौर मुझे यह भी ग्रनुभूति हुई, कि जिस तरह माता-पिता ग्रपनी सतान को पोसते है, ठीक उसी तरह पात्रो के द्वारा साहित्यकार-सतति का पोषण होता है। इतना ही नही, मुझे लगा, कि मोतिमा से मेरा रिश्ता दुहरा है। वह मेरी महतारी भी है ग्रौर ग्रात्मजा भी। लगा, कि मेरा दायित्व भी दुहरा हो गया है। महतारी की व्यथा का ऋण स्वीकारते हुए, मैने उसके महाकाली-स्वरूप का ग्रपने ग्रक्षरो की मूठ सौपी ग्रौर ग्रात्मजा के प्रति दायित्व-बोध ने मुझे उसके लिए ग्राँचल सिर पर डालकर, घर-गृहस्थी के काम-काजो मे हाथ लगाने की व्यवस्था करने को प्रेरित किया।

मेरा दायित्व था, मैं 'फजीहत' का खतरा मोल लेकर भी ग्रपनी मोतिमा महतारी को साथ ले चला। मोतिमा महतारी ने ग्रपना दायित्व निभाया। हरेन्दर उसकी नगी टाँगो से ग्रा लिपटा, तो वह एकदम शरमा गई। ग्रौर,

शायद, उसे यह भी लगा, कि एक लेखक-सतति भी तो मेरे साथ चल रही है। लगा, कि अपने छौने को प्यार देते समय बाघिन अपने हाथो के तीखे नाखून बाहर नही निकालती।

नारी-पात्रो का पातरीकरण

एक कहावत है, कि 'पातर को भड़ुवा और पतुरियाता है।'—मै यहाँ यह कहना चाहता हूँ, कि नारी-पात्र के रूप मे 'पातर' (वेश्या) या कि दुश्चरित्रा नायिका को चुनने के मूल मे यदि साहित्यकार का यह ध्येय रहे, कि वह उसके चरित्र-चित्रण के बहाने अपनी कृति को 'रोचक, मनोरजक और गुदगुदाने वाली'—यानी 'बैस्ट सैलर'—बना सकेगा, तो निस्सदेह उसकी वकत भी दलाल के बराबर ही होती है। साहित्य-क्षेत्र मे ऐसे दलालो और कोठेदारो की कमी नही है, जो बहुधा नारी-पात्रो का चयन ही मात्र इसी उद्देश्य से करते है, कि उनको प्रकाशन के पातर-मुहल्लो मे बिठाकर, कुछ कमाया जा सके। कहूँ न, कि जिस तरह नारी से वेश्यावृत्ति कराकर अपने लिए रोजी कमाने वालो की एक जमात होती है,ठीक उसी तरह, ऐसे साहित्यिक-दलालो और कोठेदारो की भी बहुत बडी जमात है, जो कही आधुनिक-सभ्यता के त्रिकोणात्मक-कठघरो मे, कही प्रगतिवादी-मानवतावादी-दृष्टिकोण के कोठो पर और कही विशुद्ध कमाई के बाजारो मे नारी-पात्रो को बिठाते है और उनकी कमाई खाते है। ऐसे साहित्यकारों मे से पहले वर्ग के आधुनिक साहित्यकार 'फैशनेबुल, मैन-हटर, फ्लर्ट' और लूज-करेक्टर किस्म की उन 'वूमन-करेक्टर्स' को चुनते है, जो 'सेक्सुअल ट्रायेगिल्स्' (वासना-मूलक-त्रिकोणो) की—कभी-कभी चतुष्कोण या षटकोण या इससे भी अधिक विविधकोणो (डिफरेन्ट एस्पेक्टस् ऑफ द सेक्सुअल डीलिंगस् विद द सेवरल लवर्स) की—रचना करती है। ऐसे नारी-पात्रो को अपनी 'अल्ट्रा-मॉडर्न' साहित्यिक उपलब्धियो के कठघरो मे बिठाकर, साहित्यकार उन्हे पतुरियाने मे अपनी 'जीनियसनेस' का खुलकर उपयोग करते है।

दूसरे वर्ग के प्रगतिशील-मानवतावादी साहित्यकार पहले अपने नारी-

पात्रो को (यदि वे पातर ही हुई, तो विशेष सुविधा रहता है !) खूब पतु-रियाते है और—'अपनी कमाई के लिए आवश्यक मसाले' से निश्चित होकर—अन्त मे पातरो को 'विश्व-माता, विश्व-भगिनी' घोषित करते है। तीसरे वर्ग का तो दृष्टिकोण ही सिर्फ 'कमाना' होता है, सो उनकी भडुवागिरी उघडी हुई रहती है। इस दिशा मे, तीसरे वर्ग के साहित्यिक-भडुवे पहले और दूसरे वर्ग के साहित्यिक-दलालो (या कि कोठेदारो) से ज्यादा 'ईमान-दार' होते है।

जीवित नारी से वेश्यावृत्ति कराने वाला दलाल या कोठेदार उसे उसका 'हिस्सा' तो देता है, मगर साहित्यिक-कोठेदार तो 'पूरी कमाई' अकेले ही पचा जाता है !

उक्त कोटि की साहित्यिक-दलाली या ठेकेदारी क्या हे ? नारी-पात्रो के चरित्र-चित्रण के बहाने पाठको के 'चरित्रो' को गुदगुदाने की, या कि प्रच्छन्न-रूप से नारी-पात्रो को पतुरिया लेने के बाद, फिर उन्हे 'माँ-बहिन' घोषित करने की, या कि 'प्रबुद्ध-वर्ग' की दृष्टि मे 'नारी-चरित्रो की सूक्ष्म-तम-मनोग्रथियो को पकडने वाला 'जीनियस' साहित्यकार' घोषित होने की और विशुद्ध कमाई के नाम पर नारी-पात्रो को पतुरियाने की वृत्ति।

नारी-पात्रो को पतुरियाने की यह वृत्ति ही अश्लील हो सकती है, नारी अश्लील नही हो सकती, पातर होने पर भी नही। क्योकि जीवित-नारियो को पतुरियाने का दायित्व जहाँ देश, समाज और आर्थिक-व्यवस्था के ठेके-दारो—या कि एक ओर वैभव की, फैशनपरस्ती की और दूसरी ओर निर्ध-नता की अति—पर है, वहाँ अपनी कृतियो मे गृहीत नारी-पात्रो को पतुरि-याने का दायित्व सीधे साहित्यकारो पर ही होता हे।

पातर या दुश्चरित्र नारियो की अश्लीलता या इससे उपजी असामा-जिक-प्रतिक्रिया या कि अनैतिकता-अवाछनीयता का प्रश्न जितना विकट है, उससे कम विकट प्रश्न साहित्यकारो की पतुरिया-वृत्ति का भी नही हे।

'नारी-पात्रो के पातरीकरण' की यह पतुरिया-वृत्ति ऐसी अज्ञेय नही है कि इसे समझदार, विवेकशील पाठक और मनोविज्ञानवेत्ता समीक्षक पकड

न सके। जिस साहित्यकार की कृति मे भी यह कोठेदारी की पतुरिया-वृत्ति रहती है, वह उसके उस दृष्टिकोण मे व्याप्त रहती, जिससे प्रेरित होकर वह कृति सिरजी गई हो। और साहित्यकार का यह दृष्टिकोण ही उसका सच्चा समीक्षक भी होता है और मार्ग-दर्शक भी।

एक साहित्यकार अपातर नारी को भी पतुरिया सकता है, दूसरा पातर को भी नारी का रूप दे सकता है—सिर्फ दृष्टिकोण का अन्तर होना चाहिए। दृष्टिकोण का यह अन्तर 'जीनियस और आधुनिक' कहलाने के मोह की कलात्मक-व्याधियो से ग्रस्त और प्रगतिशीलता के नाम पर 'पाठको को गुद-गुदाने' वाली वेश्याओ या दुश्चरित्रा नारी-पात्रो का पातरीकरण करके नाम और नामा बटोरने की लिप्सा रखने वाले या कि विशुद्ध 'कमाई' की भावना लेकर चलने वाले साहित्यकारो तथा सीधे आत्मिक-सवेदना और दायित्व-बोध से प्रेरित होकर नारी-पात्रो को सिरजने वाले साहित्यकारो मे खोजा जा सकता है। यह खोजना पाठको और समीक्षको का ही काम है—जो स्वय साहित्य के पोषण, परिमार्जन और मूल्याकन के दायित्व से बँधे होते है।

× × ×

'अश्लीलता' की कोई ठोस सीमा-परिभाषा हमारे पास, शायद, नही है। इसके कई कारण है। एक कारण यह भी है कि अश्लीलता की 'पह-चान' करते समय लोग अलग-अलग दृष्टिकोणो से काम लिया करते है। उदाहरणार्थ, अश्लीलता या नग्नता के प्रति एक आदिम-आकर्षण के बाव-जूद, सामाजिक-सुविधाओ और व्यवस्थाओ के लिए जिस प्रकार के मर्या-दित नारी-पुरुष-सम्बन्धो की अपेक्षा की जाती है, वैसा चाहने और उसके लिए प्रयत्नशील रहने मे भी एक बहुत बडा व्यवधान आ गया है। आँखों को ही नही बल्कि आत्मा को भी खटकने वाली अश्लीलता (यह अश्लीलता या नग्नता सिर्फ नारी-पुरुषो के यौन-सम्बन्धो की ही नही, बल्कि एक छोर पर आधुनिक-सभ्यता और सस्कृति के नाम पर पनपती जा रही आचार-हीनता और दूसरी छोर पर 'घिनौनी दरिद्रता' की चरम-सीमा तक पहुँची हुई इसानियत की भी है।) हर उस क्षेत्र मे मिल जाएगी, जहाँ आर्थिक-

सामाजिक अव्यवस्थाओ और विच्युतियो का जाल फैला हुआ हो। मगर, इनकी प्रत्यक्ष वीभत्सता के प्रति उदासीन जन भी साहित्य के पर्दे पर उभरने वाली उसकी छाया-मात्र को देखकर बिदकने लगते है। बल्कि इससे भी बडी विडम्बना तो यह है, कि वस्तुत अश्लील साहित्य को तन्मय होकर पढने वाले भी बहुत है और ऐसे लोग अश्लील कृतियो से बिदकते भी नही है। मगर उन कृतियो की भर्त्सना करते समय ये अश्लीलता-प्रेमी भी 'अश्लीलता की ओर से उदासीन' रहने वाले समीक्षको की पाँत मे शामिल हो जाते है, जिनमे 'चरित्रो' का गुदगुदाने या 'सेक्स-अपील प्रोड्यूस करने वाली' नही, बल्कि अश्लीलता और नग्नता की विषैली जडो पर कुठाराघात करने वाली प्रखरता होती है।

पेशेवर कोठेवालियो या कि चलती-फिरती कोठेवालियो के जीवन की वास्तविकता की अन्तरग परतो तक झाँकने की जगह, उनमे प्रच्छन्न या प्रत्यक्ष आसक्ति रखने वाले भी, बहुधा ऐसी कृतियो को पढते ही बिफर उठते है, जिनसे निष्कर्ष यह निकलता है, कि नारी-वर्ग को वेश्यावृत्ति के लिए या कि दुश्चरित्रताओ के लिए बाध्य करने और इस नारकीय वातावरण को कायम रखने वालो मे कही-न-कही उनकी अपनी काहिली और अपनी चरित्रहीनताओ का हाथ भी है।

मेरे सामने 'मोतिमा मस्नानी' के सदर्भ मे अश्लीलता की बात उभरी है। मेरे एक पर्वतीय-बधु ने ही मुझ पर यह आरोप लगाया है कि 'चौथी मुट्ठी' मे मोतिमा का चरित्र-चित्रण और उसकी भाषा अश्लीलता से आक्रात है।

मैंने अपने पर्वतीय-बधु को उन दिनो की स्मृति दिलाई, जब होलियो के अवसर पर वह सास्कृतिक-पर्व के नाम पर, अपनी आत्मिक-हीनताओ की कीचड दूसरो पर उछालने को मदमत्त होकर घूमा करते थे। और 'बकुवा टोली' मे शामिल होकर, ऐसी-ऐसी गदी, घिनौनी और अश्लील हरकते किया करते थे, गालियाँ बका करते थे, कि घर-गृहस्थी वालो को अपने घर के दरवाजे बद कर लेने पडते थे। 'छरडी' के दिन 'श्लीलता के ठेकेदारो' की सास्कृतिकता इस हद तक नगी, घिनौनी और अश्लील हो जाती थी

कि दुश्चरित्रा औरतें तक दिन के उजाले मे भी बाहर घूमने का साहस नही जुटा पाती थी। आज भी हिन्दुओ की यह सास्कृतिक-नग्नता मिटी नही है।

मैने पाया, कि मित्र-बधु कुछ खिसिया गए है। जब मैने उनसे पूछा, कि 'अकारण ही पागलो से भी ज्यादा सज्ञा-शून्य होकर टोले-मोहल्लो मे नगा नाच करने मे अश्लीलता है, सास्कृतिक-पर्वो के नाम पर अपने मन के पापाचारो और आत्मिक-गदगियो को दूसरो पर उछालने मे अश्लीलता है, या कि पति द्वारा शोषित-पीडित और सतान के पालन-पोषण की विभीषिका से बौराई हुई अनाश्रिता मोतिमा के चरित्र और उसकी भाषा मे।'···तो, मित्र महोदय और भी खिसिया गए।

खैर, मेरे सामने मेरे तर्को के आगे किसी के खिसियाने या न खिसियाने का प्रश्न नही है। मैने मोतिमा के माध्यम से एक बात कहनी चाही है। वह यह, कि मनुष्य की भाषा उसके जन्मगत-सस्कारो से नही बिगडती-सॅवरती, बल्कि जन्म के बाद की परिस्थितियो और उनकी प्रतिक्रियाओ के अनुसार ढलती है। एक बात और कहनी चाही है, वह यह, कि मोतिमा यदि पगला गई, अधनगी घूमने और गालियाँ बकने लगी, तो उसकी इस 'वीभत्स स्थिति' का दायित्व उन लोगो पर भी कम नही है, जिनके बीच मे रहते-रहते दो बच्चो के पालन-पोषण को लेकर ही एक माँ पगला गई, दुश्चरित्रा और भ्रष्टा बन गई, मगर उपेक्षा और प्रताडनाओ के अलावा उसे कुछ मिला नही। मोतिमा के प्रति उदासीन रहकर उसे पागल और मस्तानी बनने तक को मजबूर कर देने वाले और उसकी नगी देह तथा गदी गालियो का जायका लेनेवाले ही उस पर अश्लीलता और दुश्चरित्रता का आरोप लगाएँ, यह एक विडम्बना तो है, मगर जैसा-कुछ हमारा सामाजिक ढाँचा चला आ रहा है, उसके बीच इससे कुछ इतर की आशा करना भी व्यर्थ है।

मुझे कहना यह है, कि मोतिमा महतारी ने अपनी नगी टाँगे और छातियाँ मुझे जरूर दिखाई है, कि—'देख, साले, मेरे बेटे! क्या हालत हो गई है मोतिमा की! उस मोतिमा की, जिसके कपोल कभी भौजियो से ठिठोली करते मे ही लाज-शरम की तुषार से फूट जाते थे!···'

मैंने अपनी ओर मे देखने का प्रयत्न किया है, मोतिमा महतारी और मोतिमा बेटी की अतरग भावनाओ को । याने जो-कुछ वह बना दी गई या विपत्तियो के बीच बन गई, वह स्वरूप तो मोतिमा ने मुझे खुद दिखाया है, मगर मैंने उसके उस स्वरूप को देखने का प्रयत्न किया है, जो वह रॉयल फोटोग्राफर द्वारा भगाए जाने से पहले थी । या कि उसका जो स्वरूप तब हो सकता था, जबकि उसे प्राणघाती-विडम्बनाओ और आर्थिक-सामाजिक विच्युतियो को न झेलना पडता ।

जिस समाज-व्यवस्था के अन्दर, जैसे हृदयहीनो के बीच रहकर मोतिमा पगला गई, उसी समाज-व्यवस्था के पोषको की दीठ से मेरी कृति गुजरे और वह तिलमिला न उठे, विफर न उठे, तो यह मेरी असमर्थता होगी । और मुझे यह स्वीकार करना होगा, कि मैने मोतिमा-कौशिला की कथा-व्यथा और इनके मातृत्व-ममत्व के चरणो मे एक मूठ अक्षत-अक्षर नही, कोरे धान के छिलके समर्पित किए हैं ।

अक्सर मेरा नाम उन लेखको मे ही आता है, जिन पर 'अश्लीलता' के आरोप लगाए जाते है । आरोपो से, आलोचनाओ से विफर उठने वाला या कि घबरा जाने वाला साहित्यकार तो मैं हूँ नही, क्योकि मैंने भारतीय-समाज के तथाकथित सास्कृतिक-साहित्यिक महतो और शोषको-उत्पीडको के आगे उनकी आत्माओ के वीभत्स और घिनौने रूपो के प्रतिबिम्बो को उघारने वाले आईने यदि रखे है, तो एक साहित्यिक दायित्व-बोध के साथ । और इन सास्कृतिक-साहित्यिक और आर्थिक-नैतिक महतो के आरोपो के और इनकी आलोचनाओ के भय से मुक्त रहकर, इनकी काहिली, इनके दोगले व्यक्तित्वो, इनकी शोषण-वृत्तियो और इनकी प्राणघाती-वर्जनाओ से आक्रांत पात्रो को अपनी लेखनी सौपी है, तो इसके मूल मे भी मेरा साहित्यिक दायित्व-बोध ही रहा है ।

जो मैने चाहा है, उससे यदि इतर कुछ सिरजा गया है—और ऐसा सिरजा गया है, जो शोषितो-पीडितो के प्रति सहानुभूति और ममता-सवेदना जगाने की जगह, पाठको मे सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक विभी-

षिकाओ-विच्युतिओ के प्रति आक्रोश जगाने की जगह, सिर्फ 'सेक्स' अपील' और 'गुदगुदी' जगाता है—तो उसका सारा दायित्व मुझ पर ही है और मै निस्सदेह उसके लिए प्रताडना और भर्त्सना का पात्र हूँ। यो मेरे लिए तो सबसे बडा दण्ड और सबसे अधिक सताप की बात ही यही होगी, कि मै जिन नारी-पात्रो का चरित्र-चित्रण करूँ एक आत्मिक-सवेदना और साहित्यिक दायित्व-बोध के साथ, वही पाठको को 'गुदगुदाने' और उनमे 'सेक्स अपील' जागृत कर, मेरी कृतियो की बिक्री मे हाथ बँटाकर, मेरी कमाई का साधन बने।

× × ×

जबसे अपने साहित्यिक दायित्व-बोध के प्रति सचेत हुआ हूँ—विशेषकर सन् 1954 के बाद—तब से मैने प्रयत्न यही किया है कि मै पात्रो के प्रति अपने दायित्व को पहले निभा दूँ। यदि अश्लीलता और गुदगुदानेवाले रोमासो की चाशनी देकर 'बैस्ट-सैलर' कृतियो का सृजन मेरा लक्ष्य होता, तो मै हिन्दी-उपन्यासो की प्रचलित परम्पराओ से छँटने के लिए कथा और भाषा-शिल्प की दृष्टि से इतने अधिक प्रयोग नही कर पाता। मेरी प्रत्येक कृति भाषा और शिल्प की ही नही कथा-वस्तु की दृष्टि से भी मौलिक हो, यही मेरा लक्ष्य रहा है। पाठको को 'चालू माल' सप्लाई कर पैसा बटोरने की जगह, मैने उन्हे ऐसी कृतियाँ देने का लक्ष्य रखा है, जो उन्हे साहित्य के नये-नये क्षितिजो की सैर कराएँ। उनके दायित्व-बोध को जगाएँ, उनकी साहित्यिक-आनन्द की तृषा को तृप्त करे।

एक ओर मैंने 'कबूतरखाना', 'बोरीवली से बोरीबदर तक' और 'चौथी मुट्ठी' जैसी उग्र कृतियाँ दी है, तो दूसरी ओर 'मुख-सरोवर के हस' और 'वेला हुई अबेर' जैसी ललित कृतियाँ भी सिरजी है। पहली कोटि की कृतियाँ मेरे दायित्वचेता-व्यक्तित्व और दूसरी कोटि की कृतियाँ मेरे सौदर्यचेता-व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है।

अन्त मे, उन पाठको और समीक्षकों के प्रति आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिन्होने भय-मुक्त होकर लिखने की मेरी निष्ठा को अपनी सद्भावनाओ

ग्रौर ग्रात्मीयता की ग्रडिग ग्राधार-शिला दी है। ' ग्रौर मुझे यह ग्रनुभूति •कराई है, कि साहित्यिक दायित्व-बोध की जगह ग्रन्य बाह्य कारणो से—यथा 'कमाई' करने, या कि 'जीनियस' कहलाने,या कि ग्रालोचको की ग्रालोचनाग्रो ग्रौर सामाजिक-सास्कृतिक ग्रौर ग्रार्थिक ठेकेदारो के भय से—ग्रपने सृजन की दिशा को मोडने वाला साहित्यकार खुद ही मुडा करता है,साहित्य को नया मोड नही दे सकता। इस 'ग्राम गलतफहमी' से मुक्त रखने मे भी मुझे ग्रपने पाठको ग्रौर समीक्षको का वरेण्य-सहयोग मिला है, कि पाठको की समझ बहुत कच्ची होती है ग्रौर उन्हे चलती-चीजे ही ज्यादा रुचती है। मुझे इस सत्य का परिचय भी पाठको से ही मिला है, कि सिर्फ 'मनोरजक ग्रौर रोचक' कृति को पढने के बाद जहाँ पाठक फिर उसके प्रति कोई लगाव नही रखता, वही प्रचलित 'फॉरमूलो' की कसौटी पर 'फेल' साबित होने वाली कम रोचक-मनोरजन, मगर वस्तुत श्रेष्ठ कृति को वह सदा-सदा के लिए ग्रपनी ग्रात्मीयता का उपहार देता है।

मै ग्रपने उन ग्रालोचको का भी ऋणी हूँ, जिन्होने मेरी वास्तविक त्रुटियो ग्रौर कमियो की ग्रोर इगित करके मुझे यह बोध कराया है, कि साहित्य सिर्फ सिरजा ही नही जाता, उसे परिमार्जित ग्रौर ग्रनुशासित करने का उद्योग भी ग्रावश्यक है। ग्रौर ऐसे प्रयत्न करने का उन्हे पूरा-पूरा ग्रधिकार है, जो सिरजी हुई कृति को ग्रपना समय देते है, ग्रपना ममत्व देते है, ग्रपनी दीठ देते है ग्रौर ग्रपनी कमाई भी।

—शैलेश मटियानी

कौंशिला

एक

विहान-तारा खोजने को कौशिला, माघ-महीने की हिमाली-रात मे भी तीन-चार बार घर से बाहर निकली थी, कि देवता के मदिर मे तडके ही पहुँचना फलदायी रहता है। विहान-तारा उगते ही उठ जाने का उसका इरादा था। उसने सोचा था, नहाते-धोते, फूल-पाती और अक्षत बटोरते उजियाली पट्ट हो जाएगी।[1]

मगर चौथी बार बाहर आकर लौटने के बाद, आखिर उसकी आँख लग ही गई थी। अरे, जैसी चोट कौशिला के कलेजे मे लगी हुई थी, उसे या तो वही जानती थी, या वह ऊपरवाला परमेश्वर ही जानता होगा। गिरजे की घडी के तीन ठनाके पडने तक जिन आँखो मे, नीद की जगह आँसुओ की लच्छियाँ ही लटकी हुई थी, वे घडी-दोघडी और भी जागरण कर सकती थी।

मगर, लिलुली छोरी अचानक उठकर, कौशिला की छाती से चिपक गई थी, नौराट-कौराट करती हुई। सबेरे से ही उसे ज्वर चढा हुआ था।

कौशिला ने पहले उसके माथे, फिर पेट पर अपनी हथेली फिराई, 'मेरा चेली, मेरी छौनी, मेरी टुटुडिया, मेरी घुटुडिया, मेरी लिलुवा', कहते-कहते उसे पुचकारा। इसके बाद, उसके सिर के बालो को अँगुलियो से गुजबुजाना शुरू किया—"चेली, तेरा-मेरा इन्साफ तो अब चितई के गोल्ल-देवता के दरबार मे ही होगा।"

और लिलुली को 'निनुरी, पोथी, निनुरी-निनुरी-निनुरी' कहते-कहते, न-जाने किस क्षण, स्वय कौशिला को भी गहरी नीद आ गई। सपने मे वह गोल्ल देवता के मदिर को जाने की तैयारी कर ही रही थी, कि लिली ने 'इजा[2], पिशाब' कहकर उसे जगा दिया था। और लिली का

---

1. प्रकाश फैल जाएगा। 2. माँ।

बाहर आँगन मे मुत्ती-मुती करवाने को लाने पर कौशिला ने देखा, कि सामने जालना की ऊँची, हिमावृत्त चोटी के सिरहाने भोर की कौली-धूप का एक बादल-जैसा फैल गया था।

× × ×

"ओ बबो[1], दोफरी[2] हो गई है।"—कहते हुए, कौशिला ने लिली को आँगने के एक पाथर पर मुत्ती करने को रख दिया और खुद आँगन के किनारे पडे फूलो के गमले की ओर बढ गई। आँगन के दोनो पार्श्वों की कुछ ऊँची दीवारो के ऊपरी सिरो पर, आठ-नौ गमले इस तरह रखे हुए थे, जैसे किसी बरसा से वीरान बँगले के बूढे चौकीदार ने मरते समय, अपने काँपते हुए हाथो से उन्हे एक कतार मे रखने की चेष्टा की हो।

किसी जमाने मे रतनसिंह हलवाई ने उन गमलो में फूलो के पौधे लगा रखे होंगे, मगर आजकल तो आठ गमलो मे कौशिला ने लाई के दो-दो पौधे लगा रखे थे, जिनके पातो को वह रोज साग-टपकिया के लिए फूलो की तरह ही बीनती रहती थी। नवे गमले मे एक पुराने गुलाब का खूँटा था, जा बसत-ऋतु मे कभी-कभी हरा हो जाता था, मगर न उसमे पात ही फूटते थे, न फूल ही। गुलाब के खूंटे की बगल मे एक सरसो का पौधा अपने-आप उपजा हुआ था। चूँकि कौशिला पानी सभी गमलो मे रोज ही भरती थी, सो सरसो का वह पौधा फागुन आने से पहले ही फूल गया था।

कौशिला सीधे सरसो के ही गमले की ओर बढी थी, पर सरसो के फूलो को हाथ लगाने से पहले ही, यह कहते हुए लौट गई, कि 'छिहाडी[3] मेरी मति मे भी पाथर पड गए है, बिगैर नहाए ही फूलो को लग दिया था अभी।'

लिली ने अपने पाँवो मे ही मूत लिया था। कौशिला ने उसे जल्दी-जल्दी उठाया। धोती से उसकी टाँगो को पोछते-पोछते, अन्दर उठा ले गई—"द, छोरी कल से जरो से लमलेट-परचेत-जैसी हो रही है, सबेरे-सबेरे मूत मे लथपथी गई है। अब ठण्डे पानी से धोती हूँ, तो और शीत

1. अरे, बाप रे! 2 दोपहर, 3. छि-छि।

पकडेगा, मेरी बाबुली को।"

लिली को पोछ-पलास के, कौशिला ने फिर बिछौने पर सुला दिया। जल्दी से एक बाल्टी पानी लेकर, पिछवाडे की ओर गई। वहाँ गल्ली मे एक चौडा पत्थर रखा था उसने, नहाते समय बैठने को। उस पर पालथी मारते हुए, 'हर-हर-गगे, हर-हर भागीरथी—हर-हर-गगे, हर-हर भागी-रथी' कहते हुए, उसने उस बरफ-जैसी पानी की बाल्टी को अपने सिर पर डाल लिया—

"हर-हर-हर-हर-हर।"

कौशिला को ऐसा लगा, जैसे उसके शरीर के रोएँ-रोएँ के अन्दर की ओर बरफ का एक-एक टुकडा घुस गया हो। रात को लिली के चूसने से फूले हुए, उसके कुचाग्र भी एकदम सिकुडकर किसमिसी हो गए। उसे ऐसा लगा, जैसे उसका रक्त ही जम गया हो और वह एकदम अरअरा कर बाल्टी को वही छोड के, सीधे कमरे की ओर दौडी। एक सूखी धोती से अपना शरीर पोछा और जोर-जोर से 'हर-हर-हर-हर, हरे कृष्णा, हरे कृष्णा, हरे रामा, हरे रामा' कुलबुलाती, चूल्हे मे आग जलाने लगी।

आग सेकने से, उसके शरीर की कँपकँपी थम गई, तो उसको चाय पीने की इच्छा हुई। उसने छोटी-सी चहा की तौली को पानी लेने के लिए उठाया, मगर फिर यथास्थान रख दिया—"द, मेरी मति भी भिरष्ट[1] हो गई है। कहाँ मैंने गोल्ल देवता के दरबार मे हाजिर होना है, कहाँ सबेरे-सबेरे ही चहा पीकर, अपना बर्त[2] खण्डित कर रही हूँ।"

गोल्ल देवता के दरबार मे हाजिर होने की सुधि आते ही, कौशिला के शिथिल अगो मे एक चमक-जैसी आ गई और वह एकदम अपने कमरे के पूर्विया-झरोखे की ओर लपकी। लोहे की सलाखो से मुँह सटाते हुए, उसने चितई की ओर अपने दोनो हाथ जोडें—"गोल्ल देवता हो, तुम्हारे ही दरबार मे हाजिर होने की तैयारी कर रही हूँ। बस, अब मुझ दुखियारी और होते हुए खसम-बेटो के लावारिश औरत का तुम्हारे सिवा कोई पालनहार है भी

1. भ्रष्ट। 2 व्रत।

नही। कर देना हो, परमेश्वर, बाल-चीर के इन्साफ कर देना। जिन अत्याचारियो ने मुझको होते हुए राजकुँवर-जैसे बेटो के बिगैर-बेटो की, और होते जीते जी सही-सलामत लेफ्टीलैन खसम के रॉडी-जैसा बना रखा है और जिन्होने मेरा हक मार रखा है—उन तीनो का सत्या-ा-ा-ा-ा-ा-ा-ा-नाश कर देना हो, परमेश्वर !"

इतना कहते-कहते, कौशिला की ऑखो से वही रातवाली लच्छियाँ लोहे की सलाखो पर लटक गई। जुडे हुए हाथो को खोलकर, उसने अपनी छाती को पटपटाना शुरू कर दिया—"जिस सौर[1], सासू और सौत रॉडियो ने मुझ दुखियारी की जिन्दगी को मिट्टी में मिला रखा है; जिन चुडैलो ने भरपूर भण्डार वाले मकान से निकालकर, मुझे इस बियाबान-सुनसान मकान के एक कोने मे लावारिशो की तरह खदेड रखा है, उनकी लाल बस्तुर से ढँकी हुई झॉझी एक साथ नीचे बिशनाथ के शमशान-घाट मे जब पहुँचेगी—हे, गोल्ल देवता हो, मेरे परमेश्वर, तभी मेरी इस घोर सताप से धू-धू-धू सुलगती हुई छाती मे भी ठण्डक पडेगी। · मुझ अभागिनी को आज सब चीजो के मौजूद रहते हुए भी, सीता मैया का जैसा बनवास भोगना पड़ रहा है। पहला घरबार मेरा, पहली घर-गिरस्थी मेरी, पहला कारोबार, पहला सारा हक्क मेरा—मगर आज डेढ साल से मुझी दुखियारी माता को, एक बीमार छोरी के साथ, इस तरह दुष्टाई से—गैर इन्साफी, अत्याचारी और बदमाशी से—इस सुनसान मकान मे खदेड रखा है। परमेश्वर हो, तेरी ऑखे भी तो फूटी हुई नही होगी ?' · अभी हाजिर होती हूँ, हो परमेश्वर, आपके ही दरबार मे। अपने दुश्मनो के सत्या-ा-ा-ा-ना-ा-ा-श के लिए घात डालती हूँ, हो गोल्ल देवता ! ···मुझ दुखियारी की लाज रख लेना ! ···"

विलाप करते हुए, कौशिला इस तरह जोर-जोर से छाती पीट रही थी, कि उसके ठण्ड से किसमिसाए हुए कुचाग्र फिर फूल गए थे और उनसे दूध चूने लग गया था। इसके अलावा, छाती पीटने के कारण, उसके ऑसू अब—

1 ससुर

गालो पर होते हुए लुढकने की जगह—सीधे धरती पर ही मसूर-दानो की तरह गिर रहे थे, टप्-टप्-टप्

× × ×

रुदन और आक्रोश का वेग कुछ थमा, तो कौशिला ने जल्दी-जल्दी एक थाली मे थोडे-से कोरे अक्षत रखे, पाँच पुराने विक्टोरिया-छाप बडे पैसे रखे, पाँच अगरबत्तियाँ रखी, पाँच ही रुई की बातियाँ रखी और एक कोने मे कोरे सिदूर की पुडिया रखी।

इसके बाद, कौशिला फिर आँगन मे गई। सरसो के कुछ फूल बीने, चमेली की बेल मे से, इन दिनो ही फूटी हुई, छोटी-छोटी चमेली की पत्तियाँ बीनी। फूल-पत्तियो को भी थाली मे एक किनारे रखने के बाद, कौशिलाने अपनी सबसे ज्यादा फटी हुई धोती और सबसे पुराना ब्लाउज पहना।

कपडे पहनकर, लिली को उठाने के लिए आगे बढी ही थी, कि उसे, अपने सिरहाने के पास पडा हुआ जवाबी-पोस्टकार्ड दिखाई दिया और उसने कहा—"मजबूरी के कारण, तुम्हारे मन्दिर मे पहुँचने मे कुछ देर भी हो जाए तो माफी देना, हो, गोल्ल देवता!" और फिर—कॉपिग पेसिल मे थूक लगा-लगाकर—अपनी रामपुर वाली दीदी के नाम पत्र लिखना शुरू कर दिया—

"सस्ती सिरी सरबोपमा योग मेरी दीदी सरस्वती देबी को तुम्हारी बहन अलमोडावाली कौशिल्या देबी की बार-बार हाथ जोडी, पाँवो पडी पैलागन पहुँचे। ज्यादा हाल-समाचार क्या लिखूँ, क्योकि मैंने इसी समय चितई के गोल्ल देवता के मन्दिर मे पहुँचना है। जिन घोर दुखो और जुलम-अन्धेरो की वजह से आज मुझे मजबूरी के साथ जाना पड रहा है—मेरे ससुर, मेरी सासू और मेरी सौत रॉडियो ने जैसे-जैसे अत्याचार मुझ पर किए है, दिदी, मेरी ही छाती जानती है। मै वाली लडकी थी, जो इन राक्षसो के घर इतने बरस पतिबर्त-धर्म को निभाते हुए और अपनी इज्जत को सही-सलामत रखते हुए खा गई। दूसरी कोई कमजात और छोटे खान-दान की होती, तो···अब इस छोटे पोस्टकार्ड मे ज्यादा खुलासा लिखने की

गुजाइश ही कहाँ है ? अपनी दुखियारी जिन्दगानी की सारी दास्तानो को मैं पहले तेरे ही नाम पर भेजी हुई लम्बी चिट्ठियो मे मय खुलासे और अपने हाल-चालो के लिख चुकी हूँ । इस जवाबी पोस्टकारड को तो मैं एक बहुत ही जरूरी काम से भेज रही हूँ । मेरी दिदी, तू अपनी इस दुखियारी बहन पर रहम करना और···ओहोरे, मेरी मति भी उजड गई है। अब इस पोस्ट-कारड मे असली और जरूरी बात लिखने की गुजाइश ही नही है । खैर, मैं साथ वाले जबाबी कारड मे··

···इस जवाबी कारड को मैने अपना पता लिखते हुए भेजने के लिए खरीदा था, ताकि तू जल्दी-से-जल्दी मेरे इस पत्र का इस पत्र को पाते ही जबाब देदे । मगर अब लाचारी से इसी मे बाकी बाते लिखने को मजबूर हूँ, माफी देना । और या तो तू अब अपने पास से पोस्टकारड फौरन लिख देना, या मैं कल को एक पोस्टकारड और खरीदकर, उसमे अपना पूरा पता लिख करके, अलमोडा के बडे पोस्ट आफिस वाले लेटर बक्स मे डाल दूँगी, कल सबेरे ही । उसके तेरे पास पहुँचते ही, तू मुझे फौरन से पेशतर जबाब दे देना । ओहोरे, अब इस जबाबी कारड मे भी तो थोडी ही जगह रह गई है । अब से मैं तुमको जरूरी चिट्ठी लिखने के लिए, यातो लिफाफा ही लाया करूँगी, या बडे वाले पोस्टकारड भी तो होते होगे ? उनको खरीदकर लाऊँगी । खैर, इस समय अपनी जरूरी लिख रही हूँ। गोल्ल देवता के दरबार मे अपने दुश्मनों के सत्यानाश के लिए घात डालने के लिए एक काला बोकिया[1] भाखना[2] बहुत ही जरूरी है। तू खुद इस बात को जानती ही है, उस साल से, जिस साल तूने अपने पहले घरवाले उतमसीग का बीज उजाड़[3] करवाने के लिए इसी मन्दिर मे घात डाली थी । मगर मेरे पास बोकिया खरीदने के लिए रुपये नही है । कारड मे भी ज्यादा लिखने को ठौर तू देखते पत्र के दश-पन्दर रुपये मन्यौडर से मेरे नाम पर भेज देना । जरूर-जरूर । जीजा जी को मेरी···तेरी बहन कौ···"

'कौ' के बाद, 'शिला' पहले पोस्टकार्ड में डाली हुई तारीख के ऊपर

1. बकरा । 2. देवता के नाम पर पूजा की घोषणा । 3. वश-नाश ।

बची हुई जगह मे लिखा, कौशिला ने, और अपनी दीदी के बेटे-बेटियो के नाम भी इधर-उधर बची हुई जगहो पर लिखे। मगर, 'आशीष' लिखने को ठौर नही ही मिली, तो पते की ओर 'सबको मेरी बार-बार आशीष पहुँचे,' लिख दिया।

लिखना समाप्त करके, कॉपिग-पेन्सिल से एक-एक शब्द को ठोकते हुए, कुछ जोर-जोर से पढा। दोनो पोस्टकार्डो को पढ लेने पर, एक अतृप्ति और आक्रोश का भाव उसकी आँखो मे उतर आया—पोस्टकारड बनाने-वाले चिट्ठीरसैनो के हाथो को लखुवाबाई[1] पड जाए, दो-चार आँगुल भी और चौडे होते पोस्टकारड, तो अभी और कितनी ही जरूरी बातो के साथ-साथ 'मन्यौडर जरूर-जरूर भेज देना, दिदी, इस गरदिश की मारी को, इस बखत मेरे जरूरी काम का हरजा हरगिज नही करना।' तो जरूर-जरूर ही लिखना था।

लिली सोई हुई थी। पोस्टकार्ड को ब्लाउज मे खोसते हुए, कौशिला ने पहले उसके माथे पर हाथ रखा। 'जर तो इस समय, परमेश्वर की मिहर-बानी से, कुछ कम ही है, छोरी को!' कहते हुए उसके कपोलों को चूमा। लिली के कपोलो को चूमने मे, कौशिला को अचानक सुधि आई, कि लिलुली छोरी ने तो कल शाम से कुछ खाया ही नही है? ··

कौशिला ने कल से ही व्रत रख लिया था, मगर लिली के लिए उसने छोटी-छोटी दो रोटियाँ पका दी थी। उसके बेटे सुरेन्दर की एक पुरानी दर्जा तीन की 'बालपोथी' उसके पास कई सालो से पडी हुई थी। उसे गगा-दत्त बुकसेलर के यहाँ साढे-तीन आने मे बेच आई थी। छ पैसो का लिली के लिए दूध लिया था, दस नये पैसो का जबाबी पोस्टकार्ड लिया था। चार पैसे एक मुद्दत से बचा रखे थे बडे, पाँचवाँ मिलाकर, गोल्ल देवता के मदिर मे चढाने के लिए रख लिए थे।

गंगादत्त बुकसेलर के यहाँ से पैसे गिनते हुए लौटते समय, कौशिला ने सोचा था, काश, कि उसने सुरेन्दर की एक किताब और चोर ली होती?

---

1 पक्षाघात।

दर्जा तीन की बालपोथी उसने तभी से अपने पास रख छोडी थी, जब वह परिवार के साथ ही रहती थी । पद्रह साल पहले, उसके पति गुमानसिह ने, जो उस समय इटर कालेज मे पढ रहा था, उसे अ-आ से लिखना-पढना सिखाना शुरू किया था । तीन वर्षो मे वह बडी कठिनाई से स्वर-व्यजन और बाराखडी सीख पाई थी । घर के कामो से अवकाश ही नही मिलता था ।

आज से पाँच साल पहले, जब उसके सिर पर दूसरी सौत आ गई और सास-ससुर का दुर्व्यवहार पराकाष्ठा पर पहुँच गया था, तब अपनी रामपुर वाली दीदी को उसने अपने दु ख का हाल-चाल पडौस के कृपालदत्त चपरासी से लिखवाकर भेजे थे । कृपालदत्त ने, रतनसिह की दुकान की गरम जलेबियो के स्वाद मे डूबकर, उस पत्र का भेद खोल दिया था और कौशिला को हण्टर झेलने पडे थे, अपने ससुर रतनसिह हलवाई के । उसी दिन से उसने यह निश्चय किया था, कि खुद पत्र लिखना सीखूँगी ।

अवकाश मिलते ही, रात को जाग-जागकर, उसने लिखने-पढने का अभ्यास किया था । सुरेन्दर की 'बालपोथी' भी उसने उन्ही दिनो चुराई थी, जिसे वह रात को अकेले मे, सुरेन्दर से भी छिपा-छिपाकर पढती थी । पेन्सिल उसने अपने छोटे बेटे नरेन्दर की पैण्ट की जेब मे से खिसकाई थी ।

'बालपोथी' को बेचते समय, कौशिला का मन बहुत कलपा था, पर विवशता थी । उसी विवशता की कचोट में, उसके मन मे यह बात भी आई थी, कि अगर एक किताब भी उस समय और चोर रखी होती, तो दीदी को पत्र लिखने के लिए लिफाफा खरीदा जा सकता था ।

दूध का गिलास ज्यो-का-त्यो कानस पर रखा हुआ था । कल शाम लिली ने पिया ही नही था । इस समय कौशिला को अनायास सुधि आई, तो वह टीस से कुलबुला उठी—"हाई, मुझ रॉडी की मति भी एकदम पर-लोक-जैसी हो गई है । अपनी फूटी हुई कपाली के कारण कल से बर्त ले रखा था, तो शिबो, लिलुली छोरी का भी उपास करवा रखा है । रात-भर

छोरी भूखी ही सोई रही। इस समय भी मुझे बडी मुश्किल से होश आया है।"

थाली मे से दोनो छोटी-छोटी रोटियाँ निकालकर, कौशिला ने, उन्हे चूल्हे के कोयलो पर सेका। इसके बाद, दूध का गिलास उठाया। दूध गरम करने रखा, तो फट गया। उस फटे हुए दूध को देखकर, कौशिला की आँखो मे सताप के कारण एक धुँधलका-जैसा छा गया और वह रो पडी—"द, तुम कौयलो का भी सत्यानाश हो जाए।" और दूध का गिलास उसने जलते हुए कोयलो पर उलटा कर दिया—"हे भगवान, मै अपनी लिलुली छोरी को रोटी किस चीज के साथ खिलाऊँ? छाती का दूध तो छोरी ने रात को ही लभोड-लभोड कर चूस रखा है।"

असह्य सताप से कौशिला का मन बासी दूध-जैसा ही फट गया। उसे ऐसा लगा, जैसे दूध नही फटा है—उसका कलेजा ही फट गया है।

खूब रो लेने पर, जरा चित्त हलका हुआ, तो कौशिला ने कानस के ऊपर रखी आधी मिसरी उठाई। उसे दाँतो से कुट-कुटाकर, रोटियो का चूरा करके, एक छोटा-सा गोला बनाया और लिली के पास आकर बैठ गई.

निंदियाई लिली को अपनी गोद मे लेकर, कौशिला ने चूरे के लड्डू मे से थोडा चूरा लिली के मुँह मे, 'आँ कर चेली, लड्डू खाएगी।' कहते हुए डाला ही था, कि उसकी आँखो से फिर आँसू बहने लग गए—"गोल्ल देवता हो, तुम्हारी भी आँखे ही होगी? होते हुए बाप के मेरी चेली सूखी-बासी रोटी का टुकडा खा रही है। उसी बाप के मेरी सौत राँडी से पैदा हुए बेटे—द, राँडी अपनी औलाद को नही भुगते, जैसे उसने मेरी छाती मे घुटनें टेके, उसकी छाती के हाडो मे ये लम्बे-लम्बे गुजिया कीडे पड जाएँ, परमेश्वर करे—उस मेरी सौत राँडी के बेटे छत्तीस व्यजन, बत्तीस परकार का भोग उडा रहे होगे! होगा तू साक्षात् परमेश्वर, मुझ दुखियारी की पुकार सुन लेना।"

इतना कह चुकने पर, क्रोधावेग से विकल होकर, कौशिला ने-बगैर सेंटी वाले हाथ को तीन बार जमीन पर, जोर-जोर से ठोका—"मेरे सौर, मेरी सासू और मेरी सौत अपने बाप रँडुवे की जोरू···इन तीनो राँडियो का ना-ा-ा-ा श कर देना हो, गोल्ल देवता !"

दो

देव-दरबार मे घात डालने को आज से पहले भी कई बार छटपटाया था कौशिला का मन। दुखी कलेजा कई बार कलपा था, कुरकुराया था और आँखो मे कोयले-जैसे सुलग उठे थे—"हे, गोल्ल देवता हो, जिस सौत राँडी को मेरी छाती मे बिठाकर, मेरे अन्यायी सौर, खसम और सासू-सौत राँडियाँ आज मेरे तन-बदन मे आग-जैसी लगा-लगाकर, मेरा धुँआँ-जैसा देख रही है—होगा तू निसाफी परमेश्वर, इनका धुँआँ बिशनाथ के शमशान-घाट से उठता हुआ मुझे भी दिखा देना।"

मगर, पहली बार त्रिपुरसुन्दरी के मन्दिर की भगवती जोग्याणी (जोगन) ने उसे, चितई के गोल्ल-मन्दिर की ओर जाते मे, गिरजे के दो-बटिया के पास ही रोक लिया था—"कौशिला चेली, इस बाली उमर मे घाता-घात ठीक नही होती। मेरी मति मे भी तेरा ही जैसा सत्यानाशी चक्कर पडा था। मेरा घर बेडीनाग मे ठहरा। सौरास गगोलीहाट मे। मेरे घरवालो ने भी जैसे-जैसे करम मेरे साथ करे, जैसी-जैसी चोटो को मेरे कलेजे पर मारा, अब तुझसे क्या कहूँ, चेली? जब मेरा ब्याह हुआ था, नौ बरस की थी। सोल-सत्तर बरस की उमर तक जैसे-जैसे अत्याचार मैने सहे, चेली, सोचती हूँ, तो आज भी आँखो से रगत के आँसू गिरने लगते है। मेरे घर-वालो के दो [illegible] भैया ठहरे। दोनो रँडुवे ठहरे। घर-खेती का काम मेरे ही सिर पर। बात-बे-बात पर सासू के सोटे-चिमटे मेरे ही सिर पर। और तिभैया की आँडू घोडो की जैसी जवानी का धौमा मेरे ही हाई, पापिया, थू-थू-थू वह मेरी कन्यावस्था की उमर थी सोल-सत्तर की हो गई, तब अकल आई। एक दिन सासू के चिमटे और तिभैयो के सोटे खाकर हाट की कालिका मैया के दरबार मे शरण लेने पहुँची, तो कालिका मैया के चरणों मे आँसू गिर ही गए, कि 'मैया, किस जनम के पापो का दण्ड दे रही है मुझे? लोग कहते हैं, सारी हाट पट्टी मे तेरी रखवाली चलती है। एक मेरा ही दु ख,

मेरे ही दुश्मनो का अत्याचार तुझे नही दिखाई देता ?' अहारे, दैत्यवंश-मर्दिनी मैया कह रखा है, कैसा बिकराल स्वरूप ठहरा ? दु ख के बचन थे मेरे। रगत के आँसू थे मेरे। लग गए। पोथी, वह बरस था, बाद के बरस थे। सारे घर का सत्यानाश हो गया। सतर बरस की उमर मे बाल-विधवा बन गई। आकाश-उडते चील-कावो से अपनी मास की बोटी बचानी कितनी मुश्किल होती है ? दर-बदर ठोकर खाई, तो एक रास्ता भक्ति-मुक्ति का ही दिखाई पडा। सिर मुँडाया, कानो मे काठ के मुँदरे पहने और जोग्याणी बन गई तेरे सामने खडी हूँ। बता, मेरा क्या भला हुआ ? और तेरा क्या भला होगा घात डालने से ? सबर कर, चेली, जरा शान्ति धारण कर। भगवती कालिका मैया तुझे आगे को अच्छा रास्ता देगी, चेली ! जा, मेरा आशीरवाद तेरे साथ है। बाल-गोपालोवाली है, नादानी मत कर, हाँ !"

इतनी लम्बी ठण्डक-जैसी पहुँचाते हुए, भगवती जोग्याणी ने अपने लाल झोले मे से निकालकर, एक हजारी का फूल कौशिला के माथे पर रख दिया था—"सौत का दु ख कोई बहुत बडा दु.ख नही होता, चेली, बरस कट जाएँगे। एक दिन तेरे सुरेन्दर-नरेन्दर बेटो का राज होगा। तू नाती-नातिनियोवाली बनेगी।"

' 'और कौशिला के पाँव पीछे मुड गए थे।

दूसरी बार उसका चित्त चलायमान तब हुआ था, जब दूसरी सौत बागेश्वरवाली तरुली का आसन उसकी बाल-गोपालोंवाली छाती मे लगा। पहली सौत सावित्री भोटियाणी एक रगत-जैसी सभी को विदा करके इस तरह चली गई थी, कि चार महीने सौत के रूप मे जितने दु·ख दिए थे, उतना ही सुख भी पहुँचा गई। जितनी ही छाती जला गई, उतनी ही—बल्कि उससे भी ज्यादा—ठण्डक-जैसी भी पहुँचा गई थी।

मगर, वह ठण्डक भी ज्यादा कहाँ रही ? वह सुख भी कहाँ टिका ? रईसवशी ठाकुर रतनसिह डोगरी ने, अपनी खस्ता हालत के सुधरते ही, दूसरी सौत तरुली बागेश्वरवाली कौशिला की छाती पर खडी कर दी थी—"बहुत क्या बमकती है, ससुरी ! तेरे बमकुवा चूतडो की चर्बी और करीम

मास्टर के लमखरे-जैसी चटुवा जबान को ठीक औकात पर रखने के लिए, तावे-जिन्दगी अगर तेरी छाती पर मैने सौत नही बिठाई रखी, तो नत्थन-सीग डोगरी का नही, खत्तन चमार का बेटा कह देना ! मेरे मुकाबले मे खडे होनेवाले अच्छे-अच्छे रईसो की मैया मर गई, सुसरी तू कुतिया किस गिनती मे आती है ?"

और, सचमुच, रतनसिंह डोगरी ने कभी कौशिला को कुतिया से ज्यादा महत्त्व दिया भी नही। सडको पर आवारा फिरनेवाली डोली कुतिया की तरह, कौशिला सिर्फ अपने ससुर की ही नही, बल्कि सास की भी लाछ-नाओ-प्रताडनाओ के बीच ही पनपती रही थी, पिछले बरस तक।

बागेश्वरवाली के आने के तीन साल-बाद, रतनसिंह डोगरी ने कौशिला को, जूते मार-मारकर, अपने घर से निकाल दिया था—"चल्ल, सुसरी कुतिया ! मुझ-जैसे रईस के घर मे रहने की तेरी औकात भी है ?" उसकी चार महीने की लिली भी वही छूट गई थी। तभी दूसरी बार, कौशिला के मन मे देव-दरबार मे पुकार मारने की हुकार जगी थी, कि 'हे, गोल्ल देवता, हो परमेश्वर···!'

मगर इस बार की घात भी नही पडा। अनोखेलाल हलवाई की विधवा पारबती ने उसे आसरा दे दिया—"बहू, सबर कर। ऐसा छोटा हिया नही किया करते, लली ! अभी तेरी उमर ही कित्ती है भला ? यो बालपने मे ही वावली बनी फिरेगी, तो आगे अपने ही बेटो की गिरस्थी को कैसे सँभा-लेगी ? मैं रतनलाला को समझा-बुझा दूँगी और मिरदुला बहिन को भी चार बाते ऊँची-नीची समझा दूँगी। अरे, मेरे राम, जिस बहू से सुसरे सारे घर की रौनक बनी हुई है, उसे ही यो घर से काढ के सडक पै फेक देना ? हरे रॉम, हरे राम ! अरे, मै तो नू कहूँ, कि यो तो सुसरी पाँव की जूती भी बाहर नहीं फेकी जावे है।"

रतनलाला और मृदुला बहन को तो, खैर, नही ही समझा पाई, पारबती लालन, मगर कौशिला को उसने जरूर अपने यहाँ ठौर दे दी, कि 'अरी, बहू ! रैन दे, अन्यायी अपने करमो का फल भोगेगे। मै गुमानी लल्ले को चिट्ठी

डलवाऊँगी, कि घर आकर, अपनी चीज को सँभाले। तेरा हरजा-खरचा देना उसका फरज है। अपने इस फरज को उसने पूरा ना किया, तो भी तू फिकर मती करे, लली! गुमानी मिलीटरी की सरकारी सरबिस मे ही तो है आखिर, है कि नही? तेरा हरजा-खरचा तो गवरमेण्ट की अदालत से भी वसूला जावेगा!······तू फिकर मती करे, बहू! राधेश्याम सब मगल ही करेंगे। तू थोडा शान्ति से ही काम ले। लिली बेट्टी के लिए मती रोवे, उसे तो मै ले ही आऊँगी तेरे धोरे।"

मगर, गुमानसिंह डोगरी ने भी जब पारबती लालन की सीधी-सादी और नेक चिट्ठी का कोई उत्तर नही दिया, तो मजबूर होकर आखिर लालन को चार अक्षर-जरा कर्रे भी लिखने ही पडे, कि 'कौशिला बहू ने अब की ये साफ-साफ लिखवाया है, कि सीधे से, भलमनसाहती से मेरा कोई बन्दोबस्त अगर तैंने नही किया, बेटे, तो मुझे मजबूर होकर अपने हरजे-खरचे की वसूली के लिए, कचहरी का दरवाजा खटखटाना ही पडेगा।'

पारबती लालन के ये कर्रे अक्षर निष्फल नही हुए थे। दूसरे ही महीने गुमानसिह घर पहुँच गया था और उसने घर पहुँचते ही दो काम पूरे किए थे। एक तो, अपने पिता रतनसिह डोगरी की इच्छा के विरुद्ध, कौशिला को पुरानेवाले मकान मे ठौर दिला दी। न्यारा करके, पचास रुपये महीने देने का वादा कर दिया। दूसरे अपनी माँ मृदुलादेवी की इच्छा के विरुद्ध बागेश्वरवाली तरुली को, दिल्ली के लिए तैयार किया। मृदुलादेवी अपनी मिन्नतो को पूजा की घण्टी की तरह टुनटुनाती रह गई थी—"गुमानी चेला, या तो बहू को यही छोड जा, या मुझे भी अपने दिल्ली हिड-क्वाटर शहर को ले जा। सुरेन्दर-नरेन्दरों को तू ले ही जा रहा है, छोटी के देबेन्दर को तू ले ही जा रहा है। मेरे लिए घर मे अधकार-जैसा हो जाएगा। बात-पित्त से मेरे अग कैसे लाचार है, तू अपनी आँखो से बरसो देखता चला आ रहा है। मेरी टहल कौन करेगा?"

मगर लेफ्टीनेण्ट जी० एस० डोगरी मिलिट्री-डिसीप्लिन का माननेवाला आदमी ठहरा। एक बार जो इरादा कर लिया, उससे पीछे हटना

कैसा ?

× × ×

कौशिला के मन मे अब एक आशा यह भी थी, कि उसके दोनो बेटे सयाने हो गए है । कही नौकरी मे लग गए, तो हमारी माँ है, इतना तो सोचेगे ही । हो सकता है, जो दुखियारी जिदगी पूस की बर्फीली रात मे बिना बस्तुर की जैसी काट दी है—इसके बाद, चार दिन सुख-सतोष के भी सामने आ जाएँ और 'सबर का फल मीठा' वाली कहावत सिद्ध हो जाए।

इसी उम्मीद मे वह, अपने मन की सारी व्यथाओ को दबोचकर, धारा नौला के पुराने मकान की एक कोठरी मे चली गई थी—सात महीने की लिली को कलेजे से लगाए, कि 'चल, चेली ! अब न-जाने कितने बरस तेरा ही मुख देख-देख के, एक दूर की हरियाली-जैसी उमीद के सहारे काट देने है।'

आज से लगभग एक बरस पहले का वह दिन था। कलेजे से लगी लिली एकाएक कुतरुक्क किलक पडी थी और कौशिला के मन मे एक सुख की अनुभूति चुलमुला उठी थी—'द, परमेश्वर भी जो-कुछ करता है, इन्सान की भलाई के लिए करता है । उस साल की छुट्टियो मे जब लिली के बाबू घर आए थे, तो यह उमीद कहाँ थी, कि बागेश्वरवाली सौत ससुरी की छुँतिया-पाली मे चार दिन लिली के बाबू मुझ एक तरफ को फेंकी हुई को भी अपने बिस्तरे तक बुला ही लेगे ?'

मगर ईश्वर की तो महिमा अपार है । उसने एक दिन यह भी दिखलाना था, कि कौशिला को पचास रुपये के हरजे-खरचे के साथ, पुरानेवाले मकान की एक सुनसान कोठरी मे जाना पडा था । उस दिन अगर गुमान सिह का मन कुछ मोहिल नही होता और कौशिला का कोप भी जरा शान्त अवस्था मे नही होता, तो आज यह एक बुरे दिन काटने का बहाना-जैसा जो लिली के रूप मे मिला है, वह कहाँ होता ?

कौशिला को उस दिन यह भी याद आया था, कि जिस साल बागेश्वरवाली को अपने कमरे मे बुलाकर, गुमानसिह ने उसे अपने कमरे से बाहर निकाल दिया था—यह कहते हुए, कि 'तेरे बेटे तो अब बडे-बडे हो गए है,

मैडम ! उनके सामने बार-बार ब्याते हुए, तुझे शरम नही आएगी क्या ? इसके अलावा तेरी उमर मे 'प्रिग्नेण्ट' होना किसी औरत को शोभा भी नही देता ।'—तो कौशिला के मुख से निकल पडा था, 'आज से तुझ खसम को ऐसी बातो के लिए बाप की जगह पर ही समझूँगी ।'

मगर, उस साल की छुट्टियो के तीनो दिन तक, परमेश्वर की इच्छा के आगे, कौशिला का कोई वश नही चला था । एक सर्जना होनी ही थी, सो अलग-अलग दिशाओ मे पडे बीज-माटी की सगत हो गई थी ।

तीन

धरती पर हाथ पटकते-पटकते, सास-ससुर और सौत के सत्यानाश की दुहाई देते-देते, कौशिला को ध्यान आया, कि 'अरे, इस कालकोठरी की पाल (फर्श) की मिट्टी ठोकने से क्या हासिल होगा ? कलेजे से निकलने वाली हाय-हाय तो तभी असर करेगी, जब गोल्लदेव के दरबार की धरती पर शीश धुना जाएगा।'

यह सोचते ही, कौशिला ने लिली का मुँह हथेली से पोछा—"चल, चेली, तेरा भूखा पेट भी तो परमेश्वर को दिखाना है।"

एकदम फटी हुई झगुली (फ्रॉक) लिली को पहनाने के बाद, कौशिला ने खुद भी एकदम फटी हुई धोती पहनी—"अरे, अपनी सही हालत मैंने तो परमेश्वर को ही दिखानी ठहरी, और कौन है मेरा देखने वाला ? अरे, एक जमाना वह भी था, जब मैं करीबन करीबन-चौद साल की थी। बल्कि चौदवाँ लगा ही लगा था। कहाँ रामपुर से किस्मत की मारी हुई इन डोगरियो के कमीन खानदान मे पहुँच गई। अरे, किसी की गोरी चमडी के अन्दर कितना काला दिल घुसा हुआ है, इसे कौन जान सकता है ? उस समय तो ससुरा एकदम चिट्टी चमडी का दिखाई देता था।"

धोती की अ्ठ बनाते हुए, कौशिला के होठो पर अचानक एक कड़ुवी मुस्कराहट उभर आई—दुष्ट कही का। अकेले मे देखते ही, पेटीकोट के पल्लो को उपर को उछाल देता था। अब क्या तो मेरी उम्र ठहरी और क्या मेरे अंग खिले होते। फिर भी, दोनो हाथो से शरीर को टटोलता फिरता था। और आज वही खसम ऐसा बिगडा है, कि लगातार बार-तेर साल तक सताने के बाद, पचास रुपये की तनखा-जैसी बाँधकर, इस काल-कोठरी मे फैंक गया था और वह भी तीस-पच्चीस-पन्द्रह मे आते-आते दो महीने से एक पैसे की भी कसम है।···दिल्ली-जैसे शहर से गरम पैण्ट की जेब मे हाथ हिलाते हुए घर को लौटा था। एक चार-छै आने गज का बस्तुर

भी हम दोनो के लिए हराम हो गया।···उस बागेश्वराणी रॉड के लिए जार्जट का कफन लेकर आया था।·· खैर,मेरी यह फटी धोती गोल्लदेवता को भी दिखाई ही देगी, जो मेरी रामपुर वाली दीदी ने सात महीने पहले रजिस्टरी पारसल से भेजी थी।

धोती की मूठ ठीक से खोसकर, कोशिला ने लिली को अपनी पीठ पर ले लिया। लिली ने अपनी छोटी-छोटी बाँहो का घेरा उसकी गरदन मे डाल दिया।

पूजा की थाली को हाथो मे उठाकर, कौशिला ने सात बार अपने कमरे की विपरीत-परिक्रमा की और—अन्दर की ओर मुँह, बाहर की ओर पीठ करके बाहर निकलने के बाद—देली मे चावल की एक मुट्ठी जोर से पटक दी—हे परमेश्वर, गोल्लदेवता हो!

× × ×

यो तो चितई जाने के लिए वही से एक सीधा रास्ता विष्टाकुड होते हुए जाता था, मगर कौशिला लाला बाजार वाली गली की ओर निकलकर नन्दादेवी बाजार की तरफ चल पडी, कि अरे, थोडा-सा सडक का फेर पडता है, तो पडे, मगर जरा अपने दुश्मनो को भी तो दिखाती जाऊँ कि 'किस हालत मे और क्या करने जा रही हैयह कौशिला? अत्याचारियो, जिसका तुमने सारा हक्क मारकर मेहतरानी की तरह से एक काल-कोठरी मे फेक दिया।

लाला बाजार से उत्तर-पूर्व की दिशा मे, नन्दादेवी बाजार पडता था। सीढियो की एक क्रमबद्ध कतार चली गई थी, जो सीधे नन्दादेवी के मन्दिर के पायताने पहुँचकर ही समाप्त होती थी। वही सामने 'डोगरी मिष्ठान्न भण्डार' था। सकेत-पट मे 'डोगरी मिष्ठान्न-भण्डार' के नीचे, छोटे-छोटे अक्षरो मे, 'श्री रतन रेस्टोरैण्ट' भी लिखा हुआ था। एकदम ऊपर-वाली मजिल मे 'श्री रतन बिल्डिग' का सगमरमरी चौकोन लगा हुआ था।

रतनसिह डोगरी की दोदर दुकाने थी। एक मे चाय, दूध, आलू-मटर शिकार, भुटुआ और सलाई, सिगरेट, बिस्कुटवाला रेस्टोरैण्ट चलता था,

दूसरे मे हलवाईगिरी।

इन दो दर दुकानो के पिछवाडे एक दर कमरा और था, जहाँ छक्के-पजे का रोजगार चलता था। इस छक्के-पजे के रोजगार मे कुछ ऐसी बरकत थी, कि कुछ साल पहले ही दूध की बाल्टियाँ कधे पर ढो-ढोकर बेचनेवाला रतनुवा डोगरी अलमोडा के खानदानी रईसो मे गिना जाने लगा था। कहाँ धारीदार गाढे का कुर्त्ता और मलेसिया का पायजामा पहनकर नगे पाँवो फिरता था और कहाँ एक जमाना वह आया रतनसिह डोगरी का, कि बूट और बिरचिस नीचे के हिस्से मे, टाई-कोट और टोप ऊपरी हिस्से मे। सारे अलमोडा शहर और इर्द-गिर्द के खास परजा इलाके मे 'रतन-रईस'-'रतन सैप' होने लग गई थी।

नैनत्याडी दिवाल (अलमोडा का एक हिस्सा) की सरुली और परतिमा हुडक्याणियाँ (मिरासिनो) के भी भाग उँजागर हुए थे। कहाँ सडको पर मजलिस लगाकर 'तीले घारो बोला धना, डाँके की गाडीमा' गाते-गाते गले की नसे रामबाँस की पतली रस्सियो का मुकाबला करने लग गई थी और कहाँ, बारी-बारी से भोटिया घोडे मे रतनसिह डोगरी के आगे-पीछे बैठकर, 'हवा मे उडता जाए, हाए, मेरा लाल दुपट्टा मलमल का!' करने लगी।

'छक्के-पजे के खिलाडियो के लिए रुपया हाथ के मैल से ज्यादा नही हुआ करता,' रतनसिह डोगरी ने अपने यहाँ आनेवाले जुआरियो का सीना छत्तीस इच चौडा बना रखा था। इससे कई फायदे थे। एक तो रुपये हारने या खर्च होने पर जुआरियो के मन का मलाल घटता था, दूसरे रतनसिह डोगरी की दोनो दुकानो मे अच्छी बिक्री हो जाती थी। और तीसरे गरीब हुडक्यानियो का भी भला हो जाता था। जीतनेवाला जुआरी महफिल बिठाया करता था। रतनसिह डोगरी की दुकानो की रौनक बढ जाया करती थी। अगल-बगल के दरजी-बनिए और पनवाडी भी आ जुटते थे। 'कैसे, जरा इशारों से बता करके,' 'हाइ मेरी जान, जरा कमर को और लचका करके और 'लेना, मेरी जान, यह मुडे हुए नोट की लम्बी वत्ती ले जाना।' की आवाजो, परतिमा-सरुली हुडक्यानियो के उडनटप्पू नाच और गीतो से रतन

रईस की बैठक गुलजार हो उठती थी। धारानौला की भट्टी का ठर्रा अपना रँग अगल ही दिखाता था और कोई सरुली को अपनी तरफ खीचता था, कोई परतिमा को।

राजा इन्दर का जैसा कारोबार चल रहा था रतन रईस का, तो चार दुश्मन भी इधर-उधर पैदा हो ही गए थे। रईसी के ठाठ-बाट ने रतनसिह के शरीर को तो ठोस बनाया ही था उसके मिजाज को भी इतना ठोस बनाया था, कि मुँह से रबर की गुलेल पर चढे हुए गोसे - जैसे बचन ऐसे छूटते थे, कि लाला बाजार का पितुवा पनवाडी कहा करता था—"अरे, इसमे कसूर रतन डोगरी का नही है, भाई! गलती ईश्वर की है, जिसने उसके मुँह मे जबान की जगह भरुवा बारूद की बदूक फिट कर दी है।"

तीनो तरफ की आमदनी से, रतन रईस का सितारा बुलदी पर पहुँचा हुआ था और ग्रह उसके ऐसे शत्रुनाशी थे, कि अलमोडा के अन्य रईसो ने उसको उखाडने के लिए एडी-चोटी का पसीना आपस मे मिला दिया था, मगर, नदा मैया के मदिर की सीढियो के अडिग पथरौटो की तरह, रतन-सिह डोगरी अपनी जगह पर जमा रहा, कि 'अरे, सुसरो! तुम क्या मुझे उखाड़ोगे? मैं तो खानदानी रईस और सूरजवशी ठाकुर हूँ। इसके अलावा नंदामैया के मन्दिर के सामने शिव-लिग की तरह अडा हुआ हूँ!'

परशादीलाल ने तो रतन रईस के खिलाफ अलमोडा के लोगो का मेजर-नामा तक तैयार करवा दिया था, कि—इस शख्श से हम लोगो की जिदगानियो को कई किस्म के खतरे है। एक खतरा तो यह है, कि यह तराई भावर के साँड की तरह गली-मोहल्ले की जवान औरतो पर बुरी निगाह रखता है। दूसरा खतरा इस तरह से है, कि जरा कोई समझाने को जाता है, कि 'भाई रतन डोगरी इस तरह से काम-काज से बाहर निकली हुई औरतो को बुरी नजर से देखना शरीफो का काम नही है,' तो अपनी रबड की गुलेल-जैसी जबान छटकाते हुए कहता है, कि 'चुप रहो, रे ससुरो! मैं क्या कोई पैजामा खोलके फिर रहा हूँ सडको पर? या अपनी नजर को किसी के जिस्म के अदर घुसा रहा हूँ जबर्दस्ती? जरा सूट-बूट पहन के क्या घूमता हूँ

सडको पर, जलनेवाले ससुरो को एकदम मिर्ची-जैसी लगती है!' इसके अलावा हर वक्त अपने साँड-जैसे शरीर के घमण्ड मे मारामारी करने को भी तैयार रहता है। इस काम मे इसकी मदद के लिए कई आवारागर्द बद-माश और भी हैं। इसके अलावा यह शख्श जुए और शराब के अड्डे चलाता है। लिहाजा पुलिस की कडी निगरानी इस शख्श पर रखी जावे।

दो-चार बार कलक्टर साहब ने धावा भी मारा था, कि इस शख्श के खिलाफ आए हुए मेजरनामे की जाँच होनी चाहिए। मगर कडी निगरानी रखने के जिम्मेदार पुलिसवालो ने रतनसिह डोगरी को सावधान कर दिया था और कलक्टर साहब ने दो बार रतनसिह को मलाई के लड्डू बनाते हुए पाया था, एक बार—अपने घर के अदर बने छोटे मदिर मे—'ओम् जय जगदीश हरे' गाते पाया था और चौथो बार 'रतन रेस्टोरैण्ट' मे आलू के गुटके तैयार करते हुए।

कलक्टर साहब ने रतन डोगरी से बातचीत भी की थी, तो उस दिन रतन डोगरी ने कही कलेजे की एकदम निचली पर्त मे लगे हुए शहद के छत्ते का बाहर निकाल दिया था—"हुजूर, आप माई-बाप है, जरा मेरी फरि-याद भी सुने। मामूली-सा दूध बेचनेवाला इन्सान था मैं। अपनी मेहनत और आपकी मेहरबानी से एक दुकान खोली, दूसरी दुकान खोली, तीसरी दोनो दुकानो मे खुद अपने हाथो से सारा सामान तैयार करता हूँ, हुजूर! आपकी दुआ से, ईश्वर ने रोजगार मे बरकत दे दी। आज जरा अच्छी हालत मे हूँ। बस, इतना ही मेरा कसूर है, हुजूरेआली! येअलमोडा के शहरी लोग असल मे मुझसे जलते है, कि कहाँ गाँव से एक मामूली दूधबेचू खसिया आकर हमारे शहर मे तरक्की कर गया।"

और कलक्टर साहब 'वैल-वैल' कहते चले गए थे।

परशादीलाल से रतन डोगरी ने सरे-आम कह दिया था, कि 'जलेबी का बक्खर मेरे यहाँ से ले जा, रे परशादी! और, ससुरे, चाट खा अपने मेजरनामे को! मै फिर कहता हूँ, रे ससुरो, कि मै शिवलिग का पुजारी आदमी हूँ, जो साला मुझे उखाड़ने की कोशिश करेगा, बुरी तरह पछ-

ताएगा ।"

× × ×

कौशिला ने इकहरी-आँख से सामने दुकान की ओर देखा—अम्बादत्त काठ के कुदे से चाकलेट की कढाई घोट रहा था। चाय की दुकान मे दूसरा नौकर बैठा हुआ था। ऊपरवाली मजिल की खिडकी के पास उसकी सास मिरदुला बैठी हुई थी।

मिरदुला को देखते ही, कौशिला को एक घोर वितृष्णा हुई। उसकी सारी देह आक्रोश से झनझना उठी—"बैठी रौ राँडी खिडकी मे!"

कौशिला क्रोध से कुलबुलाती इधर-उधर देखने लगी, कि जरा कोई बोलने का सहारा मिल जाए, तो चार चोखी बाते यही पर सुनाके आगे को बढूँगी।

लिली उसकी पीठ पर चिपकी हुई थी। और कौशिला को याद आया, कि इसी सामने की दुकान मे, रामपुर से गगोलीहाट को लौटते हुए, उसकी माँ रुकी थी। सरस्वती के यहाँ से, अपने गाँव को लौट रहे थे दोनो। माँ विधवा थी, कौशिला कुँवारी।

और रतनसिह डोगरी ने कौशिला की माँ घौशिला को अपनी बातो की बक्खरदार-चाशनी मे डुबा दिया था—"अब तुम कह रही हो खुद ही, कि घर मे जरा-सी जमीन पडी हुई है। एक अकेली जान तुम्हारी ठहरी, एक छोटी जान इस बिटिया रानी की। बिटिया की उमर सयानी हो रही है। अकेली जान से उस गगोलीहाट के सुनसान गाँव मे अपनी उमर कैसे काटोगी?"

इसके बाद, रतनसिह डोगरी ने कौशिला को अपनी घरवाली मिरदुला के पास भेज दिया था और धौशिला को अलग कमरे मे ले जाकर कहा था—"तुम दोनो की खपत तो यही हो सकती है। मेरा अकेला बेटा है। रईसी खानदान ठहरा। तुम भी मौज करोगी, तुम्हारी बेटी भी ऐश करेगी।"

और दोनो, माँ-बेटी, वही रह गई थी। अरे, तब कौशिला को अक्ल

कहाँ थी ? उस समय की बातो का लेखा-जोखा आज लगाती है, तो (होने को तो, खैर, माँ ही ठहरी और इस समय स्वर्गवासी भी ठहरी) मगर, कौशिला के मुख से दो-चार बुरे वचन धौशिला मैया के लिए भी निकल ही पडते है।

सिर्फ लोगो के ही मुख से सुनने मे नही आया, बल्कि स्वय कौशिला ने भी कई बार ऐसी बाते देखी, जिनसे लोगो की इस खुसुर-पुसुर की वास्तविकता प्रकट होती थी, कि 'अरे, रतन डोगरी तो साँड तबीयत का आदमी है।'

खैर, उन दिनो ऐसी अक्ल कहाँ थी, कौशिला को ? उसे तो गुमानी उन दिनो राजकुमार-जैसा लगता था। गोरा-चिट्टा रँग, निखरा हुआ शरीर। अहा, किशोरावस्था मे तो, सचमुच, राजकुँवर-जैसा ही लगता था।

इस समय जो उन दिनो के गुमानी की सुधि आई, तो कौशिला की एक आँख अचानक नन्दादेवी के मदिर की भित्तियो की ओर उठ गई और उसका रुँधा हुआ मन भी कुछ चुलमुला उठा—छि, बेशरम भी तो बहुत ही थे, लिली के बौज्यू! क्या तो उस समय की उनकी-मेरी उमर ठहरी। अठार-उनीस बरस के वो थे, चौद बरस की मैं ठहरी। अरे, बापरे, उतनी कच्ची उमर मे ही इसी नन्दादेवी के मदिर मे खुदी हुई पत्थर की तसवीरे दिखाते थे, कि यह फलाना आसन है, यह फलाना आसन है और यह फलाना छि, नन्दादेवी मैया के मदिर मे वैसी नगी तसवीरे खोदनेवालो को शरम भी नही आई होगी ? कोढी हो जाएगा सुसरा![1]

× × ×

"क्यो हो, लिली की इजा (माँ)! आज चेली को पीठ पर चढाकर कहाँ को जा रही हो ?"—सूरज-छाप कनिस्तर को सिर पर ही घुमाते हुए, अम्बादत्त की घरवाली नदुली ने पूछा।

"क्यो, वे नदुली, पानी भरने को जा रही है क्या ?" पूछते हुए, कौशिला

1 नन्दादेवी के मदिर की भित्तियों पर भोगासन खुदे हुए हैं।

ने लिली को पीठपर से नीचे उतार दिया और फिर दोनो हाथो को मय पूजा की थाली के नचाते हुए बोली—"मै ? अरे, आज मै ऐसी जगह जा रही हूँ, जहाँ अपने दिल की हसरतो को निकालकर आऊँगी। लगातार बार-तेर साल से सकट झेलते, सबर करती रही हूँ। मेरे दुश्मनो ने मेरी जिदगी को बरबाद करने मे कसर ही क्या रखी थी ? मेरा सारा हक्क खतम कर दिया। होते हुए जीते-जागते खसम के विधवा राँड की तरह से घर से निकाल दिया। मेरी गोदी के बालक छीन लिए। अरे, पापियो, मेरी छाती से निकलने वाली यह हाय-हाय कहाँ जाएगी ?"

इतना कहकर, कौशिला ने पूजा की थाली को अपने दाएँ हाथ की हथेली पर ठहराया और, बाएँ हाथ से छाती पीटते हुए, चिल्लाई—"अरे नदुली वे, तू तो इस घर मे मेरी हालत खुद अपनी आँखो से देखती चली आई है। बता तू ही, कि कैसे-कैसे अत्याचार मैंने अपनी सासू के कारण सहे है। मेरी माता कैसी थी, या उसके साथ किस किस्म का सलूक किया गया, कौन जानता है ? वह तो औरत जात और मजबूर ठहरी। फँसाने-वालो ने नही मालूम कैसे-कैसे चरके देकर, जोर-जबर्दस्ती से उसको फँसाया। मगर, मेरी सात जनमो की बैरन ने क्या कहा था ? खैर, तू कहाँ जानेगी इस बात को। उस समय तो तू अम्बादत्त के घरबार आई भी नही थी। आज से 14-15 साल पहले की बात है। पहले तो हम दोनो माँ-बेटियो को हजार तरह के चरके देकर, फँसाकर, अपने सुत्यानाशी घर मे रखा। बाद मे, मेरी बैरन क्या कहती है, कि जो मेरी छाती मे सौत की तरह आके बैठी है, मैं भी उसको भुगतँगी। अरे, भुगतना तू अपने लाडलो को, राँडी, मेरी माता को अब क्या भुगतेगी ? वह तो इस समम स्वर्गलोक मे होगी। तो, वे नदुली, मेरी माता के ऊपर का कोप मेरे दुश्मनो ने मेरे सिर मे निकाला। अपने साँड को तो सँभाला नही, मेरी माता को नाम रखने लगी। एक साल का सुरेन्दर था, तब से मेरी छाती पर सौत-पर सौत खडी करके रखी। बाल-गोपालो वाली माता थी, कुतिया की तरह मुझको सताया। खैर, आज मैं भी जा रही हूँ, देव-दरबार मे। चार मुट्ठी चावल

छोड के ग्राती हूँ। होगा साक्षात गोल्ल देवता, मेरे दुश्मनो का सत्याना-ग्रा-ग्रा-ग्रा-श करेगा!"

कौशिला ने इस बार हाथ को, एकदम ऊपर तक ले जाकर, जोर से ग्रपनी छाती पर मारा।

ऊपर से मिरदुला की एकदम वारीक, ग्रौर खरल मे घुटी हुई जैसी ग्रावाज ग्राई—"ग्रौर जोर-जोर से पीट ग्रपने पपीतो को!"

चार

होने को तो कौशिला को गोल्ल-मन्दिर पहुँचने के लिए देरी हो रही थी, मगर दुमजले पर से मिरदुला सासू ने उखडे हुए नाखून वाली अँगुली पर ही ठोकर-जैसी मारी, तो कौशिला भी अपने वश मे नही रह सकी।

नदुली, कनस्तर सिर पर धरे, कौतुक देखने को आई हुई जैसी, वही पर खडी थी। कौशिला ने आधा मुँह नदुली की ओर घुमाया और आधा मिरदुला की ओर ही रहने दिया—"द, अन्याई रॉडी! मेरी छातियो का मजाक-जैसा क्या उडाती है? बाल-गोपालो वाली महतारी ठहरी, उन्ही के मुँह से लग-लगकर नीचे झूल गए है।' मगर, ईश्वर करे, तेरे पपीते ठोस पाथर-जैसे ही रह जाएँ। रहेगे क्यो नही ठोस, वे नदुली? एक सन्तान ठहरी, वह भी न जाने कैसे करतबो से, किस उमर मे निकाली। बाद मे तो पाथर टूट के दो कभी हुए ही नही। अपने-आप गडेरी के दानो-जैसे ठोस बने रहे औरो के पपीते। द, जो रॉडियाँ अपनी ही घर-लछमी को इस तरह से सताती है, उनके पपीतो मे ये लम्बे-लम्बे बालिश्त-बालिश्त-भर के लमपुछिया कीडे पड जाएँ।"

बालिश्त-बालिश्त-भर के कहते हुए, कौशिला ने बाएँ हाथ के अँगूठे को मिरदुला की ओर घुमाकर, कनिष्ठा को नदुली की ओर फैला दिया। फिर कुछ देर अँगूठे और कनिष्ठा अँगुली के दोनो सिरे तान-तानकर इस तरह से हिलाती रही, जैसे पतगबाज छोकरे कटी हुई पतग के धागे को अपनी अँगुलियो मे लपेटते है।

मिरदुला ने अपना मुँह अन्दर की ओर फेर लिया, पीठ कौशिला की ओर लगा दी—"बजाती रह, ससुरी, अपने लौडस्पीकर को। और जोर-जोर से बजा, मेरा क्या उखड रहा है? अभी बजार की तरफ से लौटते हुए गुमानी के बौज्यू आएँगे, तो अपने-आप तेरी हड्डी-पसली दुरस्त करेंगे। मेरी तरफ से तो और सरे-बाजार मे बकतरी लगा, ससुरी! मैंने तो तेरी

तरफ को अपनी सूरत करनी ही नही है। आँखो से जो किसी चुडैल भूतनी को नही देखा, तो मेरा क्या उखडता है, कद्दू ?"

"अरी, सासू, बहुत मन्दोदरी के जैसे भेष क्या दिखाती है ? तेरा कद्दू भी किसी दिन ऐसा उखडेगा, कि उखडता हुआ मालूम भी नही होगा।"—कौशिला ने बाएँ हाथ की हथेली पर कद्दू-जैसा लेते हुए हवा मे उछाल दिया—"गोल्ल भगवान बडे साक्षात परमेश्वर है, कैसे-कैसे अत्याचारियो के पापो के कद्दू जड से उखाड के रख दिए उन्होने तो। जिस-जिस भी अत्याचारी सासू ने अपनी बहू-बेटियो का हक्क मारके, उन्हे सताया है, और रहते खसम-बेटो की रॉड औरत-जैसी बनाके घर से निकलवाया है, उसीकी जड-कजड को गोल्ल देवता ने ऐसे एकदम जड से ही उखाड के रख दिया, कि कोई बॉस काटके लाने वाला भी बाकी नही छोडा।"

फिर नदुली की ओर मुडकर, बोली—"तू देख लेना, वे नदुली ! मेरी दुखियारी आत्मा से निकले हुए बोल-वचन दोनाली बन्दूक के कारतूसो-जैसे लगेगे, मेरे दुश्मनो की छाती मे। "और, वे नदुली, तू तो बाल-बच्चोवाली समझदार औरत है, जाननेवाली ही ठहरी, कि कैसी चोट मेरे कलेजे मे लगी हुई होगी ? एक अपने अम्बादत्त को भी तू देख, कि कहाँ तू नाचने-गानेवाली हुडक्यानी थी और कहाँ तुझे बाल-गोपालोवाली बौराणी[1] बना के घर मे बिठा रखा है। इसे कहते है, घर-गिरस्थी। इसे कहते है जोरू-खसम की जिन्दगानी, जिसमे जात-पात का भी फेर नही रहता है। एक मेरी तरफ देख, कि किस तरह के अत्याचारो के द्वारा मेरी जिन्दगानी को बरबाद करा दिया, मेरी सास-ससुर रॉडियो ने। जो खसम मेरे आँचल मे मुख डाल-डाल के बच्चो के जैसे खेल करता रहता था, उसीकी मति ऐसी भ्रष्ट करवा दी, कि खसम का सुख मैने सिर्फ ढटुली कुकुरी की तरह ब्याने का ही देखा, बस्स ! खैर, मेरे दुःखो की दास्तान तो बहुत लम्बी है, वे नदुली, कहाँ तक सुनेगी तू ? मगर, अपने दुश्मनो से मै साफ-साफ कह रही हूँ कि मुख फेरने से कान और ज्यादा मेरी तरफ को आ गए है मेरे दुश्मनो के। फिर मेरी तो

1. बहूरानी।

चोट खाए हुए कण्ठ की पुकार है, सीधे कलेजे तक उतरेगी। · ”

अब की बार फिर कौशिला ने कलेजे पर हाथ मारा और, चसक से टिसियाकर, चुप हो गई। रतन डोगरी की दुकान मे से अम्बादत्त नदुली को आँख मार रहा था। नदुली समझ गई, कि रतन डोगरी के आने की सुधि दिला रहा है। कौशिला के साथ खडी देखेगा, तो दो-चार लात उसको भी मार देने मे कसर नही।

सो, रतन डोगरी का ध्यान आते ही, नदुली एकदम नल की ओर बढी— “कौशिला गुसैंणी हो, घर मे बालक अकेले छूटे हुए है। मै जरा पानी भर के ले जाती हूँ। और तुम भी जाओ अब। सोच-समझ के अपना काम करो। बेकार मे पीछे पछताने की नौबत नही आनी चाहिए। रतन सैंप कुछ सख्त किसम के आदमी है। ”

कौशिला और जोर से चिल्लाई—“द, वे नदुली, किसी की सख्ती से मेरा क्या बिगडने वाला है अब ? पाथर से सख्त चीज और क्या होती है, वे ? इनसान तो नही होता ? फिर ? अब मुझे अपनी जान के जोखिम का भी खतरा नही रह गया है। जैसे चोट खाए हुए चित्त को लेकर, मैं घर से बाहर निकली हुई हूँ आज, उससे तो गोल्ल देवता का लिग भी हिल जाएगा, तेरे रतन सैंप की तो औकात ही क्या ठहरी ? लगेगी मेरी हाय और तू ही देखना अपनी आँखो से, कि राई-मसूर के जैसे दाने-पिटुके तो अत्याचारियो को शुरू से ही फूटते रहे है, मगर अब ये बडे-बडे लाल टमाटरो-जैसे फोडे-फुसे निकलेगे और कोई पीब नितारनेवाला भी नही मिलेगा।···”

पाँचो अँगुलियो से टमाटर-जैसे फोडती हुई, कौशिला आगे को बढ गई। कई कदम आगे बढ जाने पर, पीछे से लिली की ई—ई—ई सुनाई पडी, तो फिर लौट पड़ी—“आ, चेली, जल्दी पिट्ठी लग जा। द, मन्दिर तक पहुँचने मे बार बजने के लक्षण दिखाई दे रहे है।”

पाँच

नन्दादेवी के मन्दिर-अहाते से आगे बढ जाने पर, कौशिला के पॉव द्रुत लय मे आगे बढने लगे और कौशिला को ध्यान आया, कि—अहारे, जब तक पॉवो मे चॉदी के झॉवर बचे हुए थे, तो कौशिला की तेज चाल के साथ कैसा एक ताल-सगीत-जैसा बजता रहता था ?

रुन-झुनुक्क-रुन-झुनुक्क ·

झुमुनि-छुमुनि-रुन-झुनुक्क

टुन-टुनुक्क ·

छुनुक्क·

द, पॉवो के रुनझुनिया-झॉवरो की चॉदी भी मिट्टी के मोल बिक गई, दो पेट पालते-पालते। खसम की कमाई का आसरा टूट गया, तो फिर बिना अधार-लधार की औरत कहाँ तक अपने दिन सुख से काट सकती है ?

अरे, वह तो कौशिला ही है, जो आज तक सत्-सामल[1] दोनो सॅभालती चली आई। वरना, जैसे निर्दयीपने के साथ रतन डोगरी ने उसे घर से निकाल कर कालकोठरी मे भिजवा दिया था—और जैसे खसम पचास रुपये हर महीने के हिसाब से भेजते रहने का वचन दे गया था और फिर थूक-जैसा चाट गया—इसमे कोई दूसरी मामूली सत्-स्वभाव वाली औरत होती, तो किसी-न-किसी ठौर मुँह मार ही देती।

चलते-चलते ही, बीती हुई जिन्दगानी का ताना-बाना जैसा, खुडी-ख्याट्ट—कुडि-क्याट्ट—खुडि-ख्याट्ट—कुडि-क्याट्ट करता हुआ, आगे-पीछे को सरक रहा है। हथकरघे की बुनाई-चडी भी ऐसे ही आगे-पीछे के धागो को सरकाती, कसती रहती है—खुडि-ख्याट्ट—कुडि-क्याट्ट

कौशिला की पॉव चलाई भी कुछ ऐसी ही हो रही है। मन का सताप-सिर की लटी से लेकर, पॉवो की पिण्डलियो तक ताने-बाने के धागो की

1. सतीत्व और देह।

तरह सरकता जा रहा हे ।

जैसे कोई ग्वाला दिन-भर जगल मे इधर-उधर बिखरी हुई बकरियो के ढॉकर को सॉझ के समय एकत्र करके घर की ओर हॉकता है, तो धूल-गुबार के पर्वत-जैसे-सडकपर से आसमान की ओर उठते हुए, पीछे की तरफ छूटते चले जाते है—ठीक इसी तरह, कौशिला के अतीत की वीरान घाटियो मे बिखरी हुई स्मृतियो का ढॉकर उसके पीछे लगा हुआ है। मगर, धूल-गुबार के पर्वत, पॉवो की तरफ से उठने की जगह, अतर्मन की एकदम गहरी तलहटियो मे से ऊपर को उठ रहे है । ऑखो का आकाश चामसिया गया है । धूल के पर्वत सामने खडे हो गए है । ·

× × ×

अरे, किसी भी घर-गृहस्थी वाली औरत के लिए अपनी छाती पर सौत को सहराना पर्वत सहारने से भी कितना कठिन होता है, इसे कोई कौशिला-जैसी दुखियारी औरत ही जान सकती है । औरत की जात थी, सो पर्वत छाती पर पड पाने पर भी इसी उम्मीद के सहारे दिन काटती चली आई थी, कि हो सकता है, कभी सास-ससुर या खसम को ही सुमति आ जाए ।। हो सकता है, सौत ही कभी अपने बाल-गोपालो के लिए कौशिला की हाय-हाय से बचना चाहे, कि 'कौशिला दीदी, इस घर मे तो जेठी तू है, तो पहला हक तेरा है, दूसरा मेरा ।'

अरे, कौशिला आज दुःखो और अत्याचारो से तिलमिला-तिलमिलाकर इतनी कठोर और क्रोधी हो गई है, मगर तब तो यही चाहती थी, कि यह तरुली मेरी छोटी बहन की ठौर घेर लेती, तो फिर सताप झेलना भी कठिन नही रहता ।···मगर सास-ससुर की मिसाल तो काले धतूरे के बीजो से ही दी जा सकती है, जो दिनपर दिन जहरीले होते चले जाते है । खसम था, तो वह चमडी-बोटी का भूखा निकला । सौत खसम की, सास-ससुर की सभी की लाडली ठहरी, तो हॉक-डॉट से दु ख-सताप से दूर ठहरी । शराब-शिकार का भोग लगानेवाला घर ठहरा और काम-काज के नाम पर, सास-ससुर की तेल-मालिश के अलावा, महीने-डेढ महीने की छुट्टियो मे जरा खसम के साथ हा-

हा-ही-ही मस्त कलदरी—करदी गट्टे-पुट्टे नन्दामैया के मन्दिर को चढाए हुए सॉड के जैसे गद्देदार होते चले गए। महीने-डेढ महीने को घर आया हुआ गुमानसिंह उसके और गुण-अवगुण कहाँ से देखता, उसकी मदन-मस्तानी चमडी-बोटी मे ही चमजूँ-जैसा चिपका हुआ रह जाता था। कौशिला बेचारी तो सास-ससुर के ताने-नटौरे और लात-घूँसो की तोडी हुई ठहरी। खाने-पीने के नाम पर बची-खुची खुराक मे भी मिरदुला सासू की दीठ की फनैले सर्प की जैसी कुण्डली पडी हुई रहती थी और काम सारी घर-गृहस्थी का कौशिला के ही सिरपर ठहरा। दो बाल-गोपाल अपने ठहरे, उनको पोछना-पलासना पडता ही था। घर के काम—पानी भरने, बरतन घिसने से लेकर रसोई सँभा-लने तक—खुद ही निपटाने पडते थे। शराबी-कबाबी लोगो का अड्डा ठहरा। हुडक्यानियो और जुआरियो तक की चाकरी कौशिला को ही करनी पडती थी। ऐसे मे क्या तो देह सुखियारी रहती और क्या खून-बोटी पनपती। जिस उमर मे औरतो की देह स्पर्श-मात्र से गदराने लगती है, कौशिला की छाल हड्डियो से चिपकने लग गई थी और गुमानसिंह कहा करता था अपनी तनरा से—"डियर, कौशिला की बात करती है तू ? जैसे एकदम सूखी-बासी रोटी खाने को मिलने पर जीभ का रस सूखने लगता है, ऐसे ही उस लम्बोदरी के साथ सोने पर मेरा अग-अग घिना जाता है।"

द, रे पापी ! तब नही घिनाते थे तेरे अग-अग, जब पेटीकोट के पल्ले पकड-पकड कर उछाला करता था ? तब नही लगती थी, रे, तुझे कौशिला लम्बोदरी, जब बालको की तरह कुँवारी छातियाँ पीने लगता था ?

आक्रोश और घृणा के कारण, कौशिला की आत्मा एकदम बौखला उठी थी। हाथो की अँगुलियाँ कँपकँपा गई थी और एक हाथ से थाली बिछुलती-सी लगती थी, दूसरे हाथ से लिली छोरी की कलाई छूट रही थी। आँखो मे व्यथा की अन्तर्दाही आँच मे आँसुओ के दाने ऐसे बनने लग गए थे, जैसे गरम तेल की तई मे छोडने पर गीले बेसन के दाने—पडने लगते है।

कौशिला सोचने लगी, जैसी परिश्रमी देह-काठी थी उसकी, जैसा मोहिल मन था उसका, जैसे सुखियारे सपने थे उसके—वैसा ही घर-बार

भी मिला होता, वैसी ही गृहस्थी मे पॉव पडे होते, तो आज डेढ-दो साल की छोर। को लावारिश-जेसी पीठ पर डालकर, गोल्ल देवता के मन्दिर मे हाहाकार करने को थोडे ही जाना पडता। पद्रहवे बरस मे जब पहले ही फूल से फल-जैसा लगा था सुरेन्दर, तो कौशिला ने कैसे-कैसे सुनहले-स्वप्नो की बनियान-जैसी बुनी थी, कि तीस-पैतीस की उमर तक तो किसी-किसी औरत के पाथर टूट के भी दो नही होते हे, मगर ईश्वर की दया से सुरेन्दर की देह सुखियारी रही, तो पैतीस तक की होते ही कौशिला पोते-पोती गोद मे खिलाने लगेगी। सुरेन्दर हुआ था, तो गुमानी भी उन्नीस-बीस का ही था। कुछ ही दिन पहले तक खुद बचपना करता रहता था, फिर एकाएक ही एक बेटे का बाप बन गया था।

मोहल्ले की कुतुली सासू औरत-मण्डली मे टाँग पसारकर बैठती थी, तो मुँह से रबडी के जैसे लच्छे उतारती रहती थी—"यारो, मरद की जात ससुरी बडी चण्ट होती है। कल तक जिस गुमानी को मैने मुत्ती-मुत्ती कराई थी, आज वह एक बेटे का बाप बन गया है। बहू भी मिरदुला दीदी को ऐसी लक्ष्मी स्वरूपा मिली है, कि जिस उमर मे पाली भी ठीक से नही आती, उसी मे यह छोरी महतारी बन गई है। हमारी पिरिया को सात साल हो गए घर-गृहस्थी सँभाले, मगर लट्ठ-मूसल जैसी एकछड पडी है अभी तक। धान चीर के चावल बाहर नही निकाला।"

"बीज ही काना होगा, तो चावल कहाँ से निकलेगा? दाने का दोष मिट्टी के सिर क्यो धरती हो, सासू?"—पिरिया कभी-कभी बावली-सी बोल उठती थी। कुतुली सासू के शब्दो मे बज्जर बाँझ पिरिया को कानी कोख पिडा गई थी और उसकी गुद्दी मे कन-सॉगलियाँ घुस गई थी, जो लगातार सात वर्षो तक बाँझ रह जाने वाली औरत के कानो मे चुपचाप घुस जाया करती है।

कौशिला तो सन्तानवती है, मगर उसके कानो मे भी कनसॉगलियाँ घुसी हुई है। ये कनसॉगलियाँ कौशिला के कलेजे तक पहुँच गई है और इन कनसॉगलियो से कौशिला को तभी मुक्ति मिलेगी, जब मन का सारा

आक्रोश-सताप, फूल-बताशो के साथ, गोल्ल देवता के चरणो मे समर्पित हो जाएगा। और,अक्षतो की एक-एक मुट्ठी के साथ-साथ सास-ससुर और सौत की तिरचण्डाली चौकडी उखाडने के लिए गोल्ल देवता के दरबार मे कौशिला की घात के आँखर गूँज उठेगे, कि—हे परमेश्वर

"क्यो हो, कौशिला भाभी ? आज अपनी लिली को पीठ पर चढाकर, कहाँ तक की यात्रा हो रही है ?"—मूँगफली भूनने की कलछी से अपना सिर खुजलाते हुए, जटाधारी बुकसेलर बाबू ने प्रश्न किया, तो कौशिला के होठो से बाहर फूटती हुई गालियाँ होठो पर ही थम गई।

बुकसेलर बाबू ने भट्टी पर लोहे का तसला चढा रखा था और गरम रेत मे मूँगफलियाँ भून रहा था। चूँकि गुमानसिह बुकसेलर बाबू का सहपाठी रह चुका था, सो कौशिला को भाभी कह लेने का अधिकार बुकसेलर बाबू ने खुद ही ले रखा था। जब सुरेन्दर-नरेन्दर रामजे हाई स्कूल मे पढते थे, तो कभी-कभार 'सेकण्डहैण्ड' पुस्तके बुकसेलर बाबू के यहाँ से खरीदते रहते थे। एक यह कारण भी था, कि कौशिला से बुकसेलर बाबू का मुख-सबध बना रहा था। काम-काज से कभी नन्दादेवी के दोराहे की ओर आ जाती थी कौशिला, तो अक्सर बुकसेलर बाबू पुकार लेते थे, कि 'कौशिला भाभी, कहाँ की यात्रा हो रही है ? सुरेन्दर बेटे से कह देना घर पहुँचते ही, कि 'काव्य-कल्पद्रुम' की एक कौपी मेरे पास आ गई है।'

"अच्छा हो, बुकसेलर बाबू !" कहकर, कौशिला कभी चली जाती थी, या कभी 'मोहिनी क्या कर रही है ?' कहते हुए, बुकसेलर बाबू की घरवाली भुवनमोहिनी के साथ बाते करने को रुक जाती थी। आज भी जब बुकसेलर बाबू ने पुकार कर पूछ लिया, तो कौशिला को उत्तर देना ही पडा, 'कि मन्दिर की तरफ जा रही हूँ, हो बुकसेलर बाबू !'

"कौन-से मन्दिर की तरफ ?"बुकसेलर बाबू ने कलछी को चारों ओर घुमाते हुए पूछा—"मेरे कहने का मतलब यह है, कि नजदीक के किसी मन्दिर मे जाने लायक भेष तो तुमने बना नही रखा है। क्यो हो, कौशिला भाभी, मैंने सुना था, कि ठाकुर साहब ने तुमको अपनी फैमिली से 'डिस-

जौइण्ट' कर दिया है ?"

धूप एकदम कपाल की रेखाओ मे चमचमाने लग गई थी। घर से अभी आधा मील का रास्ता भी पूरा पार नही कर पाई थी कौशिला। गोल्ल देवता के दरबार मे घात-पुकार डालने को विलम्ब-पर-विलम्ब होता जा रहा था, मगर कौशिला, 'मोहिनी घर मे ही है ?' पूछते हुए, बुकसेलर बाबू के दुकान के पिछवाडे वाले कमरे की ओर बढ गई। जहाँ बुकसेलर बाबू के प्रश्न ने उसको यह खुलासा करने के लिए प्रेरित कर दिया था, कि आखिर वह भरे-पूरे कुटुम्ब से परित्यक्ता-सी बहिष्कृत की गई, तो किसलिए ?—वही एक लोभ यह भी हो आया था, कि लिली छोरी भूखी ही है। गोल्ल देवता के मन्दिर तक पहुँच जाने पर तो एकाध गास-टुकडे की आस हो सकती थी, क्योकि वहाँ बहुधा पूजा-पाठ करनेवाले भक्त आते-जाते रहते थे, मगर अभी तो तीन मील लम्बी सडक शेष थी और लिली छोरी की देह ज्वर और भूख से टूटने लग गई थी। भुवन मोहिनी लिली को देखेगी, तो एकाध गास खिला ही देगी। बुकसेलर बाबू से भी एक मुट्ठी मूँगफलियाँ मिल सकने की आस थी।

कौशिला अन्दर के कमरे मे चली गई, तो बुकसेलर बाबू ने भट्ठी पर चढी हुई घाण जल्दी-जल्दी भूननी शुरू कर दी और अन्दर की ओर आवाज दी—"भुवन, कौशिला भाभी को बिठा ले। मै 'ग्राउण्डनट' की किश्त उतारकर आता हूँ। आज कौशिला भाभी बडी 'डिस् अपौइण्टेड' दिखाई दे रही है मुझे।"

× × ×

"दी मास्टर ऑफ द्री डिस्कवरी आर दी बुक्स।"

जटाधारी बुकसेलर बाबू के अपने ही शब्दो मे यह उनकी 'डिफीनेशन' थी। जब जटाधारी बुकसेलर बाबू रामजे हाई स्कूल मे पढते थे, तब भी पुस्तको की खोज उनकी 'हॉबी' थी। उनकी पुस्तको की खोज बहुत ही व्यापक थी। सारे स्कूल के लिए एक प्रकार से इस क्षेत्र के सूचना-केन्द्र ही बुकसेलर बाबू थे। कौन-से लडके, याकि मास्टर के पास कौन-सी सेकेण्ड हैण्ड किताब

बिकाऊ है और कौन-से लडके को उसकी जरूरत है, इसकी खबर तो बुकसेलर बाबू के मुँह मे ही रहती थी। 'सेकेण्ड हैण्ड' किताबो को बेचनेवाले से लेकर खरीदनेवाले तक पहुँचाने की प्रक्रिया बुकसेलर बाबू के लिए आर्थिक-लाभ का माध्यम भी थी। उस समय कौन जानता था, कि वह लगातार फेल होते रहनेवाला लडका गदाधर ही भविष्य मे एक बुकसेलर और पब्लिशर बनेगा ?·· ···मगर 'चन्द्रकाता', 'चन्द्रकाता सतति', 'भूतनाथ', 'रक्तकुण्ड', 'डाकू बहराम सीरीज' और 'कोकशास्त्र', 'रति-रहस्य' 'चौरासी चुम्बन', 'चौरासी आसन' तथा अलग-अलग शहरो की रगीन रातो मे विद्यार्थियो से लेकर अध्यापको तक की गहरी रुचि को देखते हुए, गदाधर तिवारी के मन मे बुकसेलर-पब्लिशर बनने का सकल्प जाग चुका था।

और हाई स्कूल की फाइनल-परीक्षा मे तीसरी बार असफल होते ही, पहला काम गदाधर ने यही किया, कि नन्दादेवी की दोराहे के पास एक छोटी-सी दुकान साढे चार रुपये महीने मे किराए पर लेकर, 'सेकेण्ड हैण्ड कोर्स-बुक्स यहाँ से सस्ते दामो पर खरीदिए', की तख्ती वहाँ पर लटका दी, जिसमे 'बुकसेलर पण्डित गदाधरतिवारी' भी लिखा हुआ था। 'ब्रुक-बौण्ड' और लिप्टन' चाय के खाली बक्से खरीदकर, बुकसेलर बाबू ने अपने हाथो एक 'डबल आलमारी' तैयार कर ली थी। इस अलमारी के दोनो ओर किताबे रखने के लिए खाने बने हुए थे और अगली ओर 'कोर्स बुक्स' लगी रहती थी, पिछली ओर 'रोचक-मनोरजक साहित्य'।

अलमोडा-जैसे छोटे-से शहर मे उन दिनो पुस्तके सामान्यतः दुर्लभ ही थी। पाठ्य-पुस्तके मँगानेवाले दो-चार बुकसेलर थे, उनके अलावा गीता प्रेस गोरखपुर की पुस्तके और 'रामलीला नाटक' बेचनेवाले शास्त्रीजी और थे, बस। बुकसेलर बाबू ने नई पाठ्य-पुस्तको की जगह हमेशा उनकी कुजियाँ मँगाने पर अपना 'बिजनिस पौइण्ट आफ व्यू' कायम रखा और 'सेकेण्ड हैण्ड' पुस्तको को 'वन फोर्थ' या 'वन एट्थ' मे खरीदकर 'थ्री फोर्थ' मे बेचना शुरू किया। बल्कि बुकसेलर बाबू यह भी खोज-खबर रखते थे, कि आजकल कौन-कौन-सी पाठ्य-पुस्तके अन्य बुकसेलरो के यहाँ दुर्लभ है। ऐसी पुस्तको

को 'आउट ऑफ होल मारकेट, औनली एविलेबल हियर' वाले खाने मे रख-कर, बुकसेलर बाबू ने हमेशा पूरे, बल्कि कभी-कभी तो सवा-ड्यौढे दामो पर बेचा। रोचक-मनोरजक साहित्य को किराए पर लगाने की पहली 'स्कीम' भी बुकसेलर बाबू की ही उपज थी। अलमोडा-जैसे शहर मे पूरे दाम देकर पढ सकने वालो की सख्या एकदम नगण्य थी और ऐसे असमर्थ लोगो तक साहित्य पहुँचाने की दिशा मे पहला कदम तब बुकसेलर बाबू ने ही उठाया था और 'दुअन्नी-रुपया' मूल कीमत पर 'फीरोज' के हिसाब से एक-से-एक दुर्लभ पुस्तके लोगो को सुलभ करवाई।

पहले-पहले तो सभी लोग सिर्फ गदाधर-गदाधर ही कहते रहे, मगर, जब एक दिन किसन कारपेण्टर के यहाँ से 'सेकेण्ड हैण्ड कोर्स बुक्स और विविध रोचक-मनोरजक साहित्य के शानदार विक्रेता बाबू गदाधर बुक-सेलर' की तिरगी तख्ती दुकान पर चमकने लग गई, तो आते-जाते हरेक के मुँह से 'बुकसेलर बाबू—बुकसेलर बाबू' सुनाई पडने लगा।

जटाधारी तो बहुत बाद मे बने बुकसेलर बाबू, जब उन्होने महाकवि सुमित्रानन्दन पत और उपन्यासकार इलाचन्द्र जी के दर्शन किए, और उनके पीछे भक्तो-प्रशसको की भीड देखी। हाई स्कूल तक की पढाई मे साहित्यिक स्तर की रचनाएँ भी पढ रखी थी बुकसेलर बाबू ने, सो साहित्य और साहित्यकार मे भी आपकी गहरी रुचि थी। यहाँ तक, कि कई बार बुकसेलर के साथ-साथ पब्लिशर भी बनने का विचार जो उनके मन मे आया, तो सिर्फ इसीलिए, कि यदि दस-बीस रोचक, मनोरजक पुस्तके खुद ही लिखी जाएँ, तो चौगुना लाभ रहेगा। मगर, इस क्षेत्र मे भाग्य ने अधिक साथ नही दिया उनका और बुकसेलर बाबू को अपनी पहली ही पुस्तक 'जिंदगानी के दाँव-पेच'—जिसमे उन्होने असफल जीवन को सफल बनाने के सैकडो लासानी नुस्खे लिख रखे थे—को ही छापने का 'समर्थ प्रिटर्स' को इतना रुपया देना पडा, कि कुछ समय के लिए बुकसेलर बाबू स्कूल के लडको की पुस्तके खरीदने मे भी असमर्थ हो गए। बाद मे बत्तीसपेजी 'पहाडी खडी होलियाँ' छापकर बुकसेलर बाबू ने अपना घाटा पूरा किया।

इस घटना ने भी बुकसेलर बाबू को एक अमूल्य अनुभव ही दिया, पुस्तक-बिक्री की दिशा मे, क्योकि जहाँ 'जिदगानी के दॉव-पेच उर्फ जिदगानी को कामयाब बनाने के लासानी नुस्खे' की सिर्फ आठ प्रतियाँ ही बिकी थी, वही 'खडी होलियो' की किताब हर बसत ऋतु मे एक-डेढ हजार के लग-भग बिक जाती थी।·· और जहाँ खडी होलियो की पुस्तक दूसरो के गॉव-मुहल्लो मे जाकर अपनी आत्मा का सारा कीचड फेक आने वाले लोगो की टोलियाँ 'छरडी' के दिन पचम-सप्तम सुरो मे पढती थी, वही 'जिदगानी के दॉव-पेच' के एक खरीदार बिशन पनवाडी की पान भिगोने की पीतल की बाल्टी भी कृष्ण प्रसाद टमटे की दुकान मे पहुँचकर 'तॉबा-पीतल आधा धन' वाली कहावत को सबके सामने ला चुकी थी। बल्कि बिशन पन-वाडी का कहना तो यहाँ तक था, कि 'बुकसेलर साले की इस लासानी नुस्खे वाली किताब के फायदे कैसे-कैसे है, यह हर कोई आदमी मेरी खस्ता हालत देखकर ही समझ सकता है। पान बेचता था, तो दो-तीन रुपये गुजर-बसर के लिए निकाल लेता था। 'घर मे साबुन फैक्टरी' बनाकर, लाखो रुपये कमाने के नुस्खे को आजमाने मे लगा, तो इस बुकसेलर साले के बताए लासानी तरीके से सोडा कास्टिक की चाशनी बनाने मे दोनो हाथो का भुर्ता बन गया है और अब पान लगाने की गुजाइश भी नही रही।'···

और जिस महान् पुस्तक को लिखकर, बुकसेलर बाबू ने यह आशा बॉधी थी, कि सिर्फ उनको ही चार-पॉच हजार का मुनाफा नही होगा, बल्कि सारे अलमोडा शहर का नए सिरे से औद्योगीकरण हो जाएगा, वही 'वन-एट्थ' मे भी बिकनी कठिन हो गई और बुकसेलर बाबू को इस निष्कर्ष पर आना पडा, कि अलमोडा के लोगो को 'जिदगानी के दॉव-पेच'-जैसी पुस्तको की नही, बल्कि तिलिस्मी और जासूसी, या कि सोते हुए नरो को खडा करनेवाली' खडी होलियाँ जैसे पुस्तको की आवश्यकता है। जिसी 'सफल जिदगानी के दॉव-पेच' को लिखने के लिए बुकसेलर बाबू को 'देहाती पुस्तक भण्डार' से निक-लनेवाली 'मोटर ड्राइविग गाइड', 'इजीनियरिग गाइड', 'होमियोपैथी गाइड', 'एलोपैथी गाइड', और 'घर मे साबुन बनाइये', 'घर पर फर्नीचर बनाइये',

इये', 'सगीत शिक्षक', 'मैस्मरेजिम मास्टर', तथा 'इलेक्ट्रिकल टीचर',आदि 'टेक्नीकल' पुस्तके पढकर, उनका सार ग्रहण करना पडा था, वह तो दोनो बैल बिठा गई। 'मगर जिम खडी होलियो की पुस्तक को लाला बाजार के उडनटप्पू शास्त्री और चडल भट्ट की मदद से दो ही दिनो मे तैयार कर लिया था, वह चॉदी बरसा गई। अब तो अनेको बुकसेलर और भी पैदा हो गए थे, जिससे पुस्तको की बिक्री ही मारी गई थी। मगर कुल मिलाकर, पिछले बीस-इक्कीस सालो मे जो 'इन्कम' बुकसेलर बाबू को हुई, उसमे से कुछ रकम भूटान से भटुली उर्फ भुवन मोहिनी को लाने मे खर्च हो गई थी, शेष 'बुकलैण्ड बिल्डिग' बनाने के काम मे आ गई। इस प्रकार बुकसेलर बाबू ही वह पहले आदमी थे, जिन्होने 'सेकेण्ड हैण्ड' पुस्तके बेचकर, एकदम नई 'बुकलैण्ड बिल्डिग' खडी कर ली थी।

'बुकलैण्ड बिल्डिग' बुकसेलर बाबू ने निचली सडक-पिछली सडक के दोराहे के समीप, अलमोडा-पिथौरागढ रोड के किनारे, बना रखी थी। 'बुकलैण्ड बिल्डिग' मे कुल दो कमरे थे। एक सडक के किनारे, एक सडक के नीचे। याने ऊपर का कमरा सडक के समानातर था, नीचे का नीचे। नीचे का कमरा बुकसेलर बाबू ने किराए पर उठा रखा था और ऊपर के कमरे का 'पार्टीशन' कर रखा था। आधे कमरे मे उनकी वही पुरानी 'डबल अल-मारी' खडी थी और मूँगफली का कोठा बना हुआ था और अदर की ओर के आधे कमरे के दरवाजे पर 'फैमिली-रूम' लिखी एक पुट्ठे की तख्ती लगी हुई थी, जिसमे बुकसेलर बाबू का रसोई-घर और शयन-कक्ष सभी-कुछ था। शायद, अनेक कारणो मे एक कारण यह भी था, कि बुकसेलर बाबू का बडा लडका भुवनेश्वर उन्ही के यहाँ से प्रकाशित 'पहाडी खडी होलियाँ' तदनुरूप ऐंद्रिक-सकेतो के साथ गाने मे बडा निपुण हो गया था और अलमोडे की होलीबाज टोलियो मे 'छरडी' के दिन उसे अपने साथ रखने के लिए होड मचा करती थी।

इन दिनो बुकसेलर बाबू, मथर गति से अपना सफल जीवन बिताते हुए, अपनी दोमजिला बुकलैण्ड बिल्डिग मे रह रहे थे। दुकान की बगल मे

उन्होने एक लकडी का खम्भा गाड रखा था। और उसी के सिरे पर एक टूटे हुए कनस्तर की तली छै इची कील से ठोककर, चूने से 'बूकलैण्ड बिल्डिग' प्रोप्राइटर प० गदाधर तिवारी बुकसेलर एण्ड पब्लिशर' लिखा हुआ था। यह सारा मजमून तीन पक्तियो मे विभक्त था और तीनो पक्तियो के बीच की खाली जगहों को अल्मोडा के कुशाग्रबुद्धि छोकरे अकसर खडिया से इस प्रकार भर जाते थे—'बुक्लैण्ड बिल्डिग' के नीचे 'मूँगफली भवन', 'प्रोप्राइटर प० गदाधर तिवारी' के नीचे 'मालिक जटाधारी बुकसेलर उर्फ जटानद तिवारी' और 'बुकसेलर एण्ड पब्लिशर' के नीचे 'ऑफ हिज वरल्ड फेमस बुक 'पहाडी खडी होन्नी' छ-र-र-र-र '

बुकसेलर बाबू को अपनी जटाएँ सिर्फ उन्ही शैतान छोकरो के कारण उलझती हुई लगती थी, अन्यथा महाकवि पत और उपन्यासकार इला जी को देखने के बाद से ही उन्होने जो जटाएँ धारण करना शुरू कर दिया था, उसका एकमात्र कारण बुकसेलर बाबू की यह मान्यता थी, कि इस ऋषि-मुनियो के देश मे जटा-धारण ही एक ऐसा हुनर है, जिसके बल-बूते पर थोडे-से उद्यम से ही बहुत बडी सफलता मिल सकती है।

और अपनी भूटानी पत्नी भुवनमोहिनी तथा सात बेटो के बीच जटाधारी बुकसेलर बाबू वास्तव मे किसी सत-फकीर से कम नही दिखाई देते थे। बोलते समय भी उनका रूप उन औघड बाबाओ का जैसा होता था, जो साधारण ससारियो को दृष्टि मे गन्दे-घिनौने शब्दो और वाक्यो को सर्वथा अनासक्त-भाव से बोलते ही रहते है। हाँ, बुकसेलर बाबू का यह औघड रूप सिर्फ उनके परिवार, उधार मूँगफली खाने वाले विद्यार्थियो और उनकी किरायेदारिन चमेली मीरासिन तक ही सीमित था।

× × ×

कौशिला अन्दर पहुँची तो उसने देखा, कि भुवनमोहिनी अपने बालको को खिला-पिला रही थी। चाय मे भिगोई हुई रोटियो के टुकडे अपने दो छोटे लडको को वह खुद ही खिला रही थी। न जाने अस्वादु होने के कारण या कि अघा जाने के कारण, बच्चे पुचुक्क-पुचुक्क करते हुए रोटी के अध-

चाबे टुकडे बाहर उगल देते थे और भुवनमोहिनी उन्हे ठेठ रॉगलो भाषा मे ऐसी-ऐसी गालियाँ दे रही थी, कि कौशिला शरमा गई। भुवनमोहिनी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, कौशिला बोली—"मोहिनी, बालक तो सब सुखियारे ही होगे।"

"हाँ, हाँ, कौशिला दीदी! जैसे सुखियारे है अपनी महतारी के खसम ये दिखाई ही दे रहे है।"—भुवनमोहिनी, दोनो बच्चो के सिरो को झकझोरते हुए, एकदम कडुवे स्वर मे बोली—"विहान-तारा नही उगा था, कि आ गई थी। अब धूप-धाम चटकने लगा है, मगर मुझे इन मुड-चामुण्डो की नौकरी से ही मुक्ति नही मिली है। कोई थनो को झिझोडता है, कोई चहा-रोटी के लिए टेटुवा पकडता है। गू-मूत पोछने की इल्लत अलग है। कभी कोई हगता है, कभी कोई मूत देता है। मै तो साक्षात् नरक मे पडी हुई हूँ।"

"घर-गृहस्थी मे बालको की सेवा-टहल तो करनी ही पडती हैं, मोहिनी! लोग एक-एक को तरसते है, तूने तो सात हीरे जन्मा रखे है।"—कौशिला बोली, मगर उसका ध्यान भुवनमोहिनी के बच्चो की चाय-रोटियो की ओर ही केन्द्रित रहा—एक ये बच्चे है, जिनको उगलने-बरबाद करने को रोटियाँ मिल जाती है और एक मेरी यह लिली छोरी है।

कौशिला की बातो के उत्तर मे, भुवनमोहिनी और अधिक वितृष्णा के साथ बोली—"कहाँ है वे, दीदी, वो बालको के लिए तरसने वाले? इन राक्षस की औलादो को उठा ले जाते, तो मेरा सताप तो घटता। इन सतानों से तो सात पत्थर जन्मे होते, तो उनसे सिर फोड-फोडकर मरना तो आसान होता। इस नरक से तो न बाहर निकलना आसान है और न इस नरक मे रहना ही। मैं क्या जानती थी, दीदी, कि यह जटाधारी मुसटण्डा अपनी जटा के बालो की गिनती शुरू कराएगा। दिखाने को तो सत-फकीरो का जैसा भेष बनाकर रखता है, मगर एक रात सुख से नही सोने देता। इन कुजातो के गू-मूत से सनी हुई तो रहती ही हूँ, ऊपर से···अब तुझसे क्या कहूँ, वे कौशिला दीदी? तुझे ऐसा सत्यानाशी खसम मिलता, तो तू भी याद करती। तेरा सुरेन्दर और मेरा भुवन, दोनो एक ही साथ जन्मे थे।

तेरी सुख की सताने है। दो बेटे, एक बेटी—अहा रे, तुझे तो अपने मुँह से माँगी हुई सताने मिली है। मेरे तो ले साल-दर-साल आठ हो गए। एक बचा होता, सात मर गये होते, तो जरा जन्माने तक का ही दु ख रहता ।"

इतना कहते-कहते भुवन मोहिनी रोने लग गई। कौशिला, लिली को पीठ पर चढाए-चढाए ही, उसकी ओर बढी। भुवनमोहिनी के आँसू पोछते-पोछते ही उसने देखा, कि आधा परॉठा भुवनमोहिनी की बाई ओर पडा हुआ था। अपने दाएँ हाथ से धोती फैलाकर, कौशिला ने उस आधे पराँठे को कसकर पकड तो लिया, मगर उसकी सारी देह थर-थर काँपने लगी।

भुवनमोहिनी रोने मे ही थी, कि नीचे वाले कमरे मे से बुकसेलर बाबू की कर्कश आवाज सुनाई दी—"मै क्या जानूँ, कि तू कहाँ से किराया लाएगी ? मेरी तरफ से तू अपनी 'को किराये पर उठा दे, मगर मेरे कमरे का किराया मुझे ठीक टाइम पर दे दिया कर। यहाँ गोठ मे पडी-पडी लता मगेशकर के जैसे अलाप भरती रहती है, बाजार मे जाकर गाना-नाचना क्यो नही करती ?"

चमेली मीरासिन सिसक रही थी—"गुसाई मीरासी से मैने सारगी लेकर, दो-चार दिन सगत कर देने को कहा था, मगर उसको तो अपनी बहिन शीला को ही नचाने से फुर्सत नही मिलती है। बिना साज-सगत के ही गाने को जाती हूँ, तो लडके-बूढे सारे मेरे साथ ही आलाप भरते है और कहते है, कि आवाज कहाँ से निकाल रही है ?"

"तेरी आवाज तो सुसरी कही से भी निकलती रहे, मगर मेरा किराया तू टाइम पर दे दिया कर। नही तो, उठा ये अपना घुँघरू-सारगी का ताम-झाम !"—बुकसेलर बाबू और जोर से चिल्लाए।

भुवनमोहिनी बोली—"सुन ले, दीदी ! अरे, इसके लोभ को सियार लग जाएँ। दो कमरे की तो बिल्डिग बनाई थी, उसमे से भी एक कमरा किराए मे लगा दिया। वह बेचारी मीरासिन तकदीर की मारी हुई है। उमर भी अब ढलने को आ गई है, बेचारी को इसीसे कोई मुँह नही लगाता। दो साल पहले तक कार्त्तिक के जैसे कुत्ते इसके पीछे लगे ही रहते थे। इधर

बेचारी गर्मी-सुजाक से भी हाय-हाय, हाय-हाय करती रहती है। क्या करेगी अभागिनी ? तान ले-लेकर, अपनी पीडा हलकी करती रहती है। कौशिला दिदी, औरत का जनम सबसे पलीत होता है, वे ! घोर दु खो और दरिद्रता के सिवा उसके भाग मे और कुछ नही होता। अरे, मै तो अपने ही अबाल-बवाल मे तुझमे चहा के लिए कहना भी भूल गई, दिदी !"

भुवनमोहिनी चाय की केतली उठाने लगी थी, कौशिला बोल उठी—"मेरा तो आज उपास है, मोहना ! मै मन्दिर जा रही हूँ। सोचा था, जरा तुझसे बाते करके अपने कलेजे का क्लेश कम कर लूँगी, मगर तेरा दु ख तो मुझसे भी भारी है, लली !"

भुवनमोहिनी ने केतली नीचे रख दी, तब जाके कौशिला को पश्चात्ताप हुआ अपनी मूर्खता पर, कि काश, चाय बना लेने देती भुवनमोहिनी को, फिर लिली छोरी को पिला देती। अब कैसे कहे, कि लिली के लिए दूध-चाय बना दे ? अपनी औलाद के लिए औरो के आगे हाथ फैलाने मे भी कलेजा कसकता है।

आधा पराँठा अभी तक कौशिला की मुट्ठी मे ही दबा हुआ था और वह उस कमरे से बाहर निकलने के लिए व्याकुल हो रही थी। वह जो यह सोचकर अन्दर घुसी थी, कि भुवनमोहिनी बेचारी मुझसे सुखी है, सात बेटे सामने है, मगर मेरे जैसे दुर्दिन उसके कपाल मे नही है—यह भरम टूट चुका था। यह आशा भी टूट चुकी थी, कि भुवनमोहिनी लिली को कुछ खिलाएगी-पिलाएगी। ··हे राम, सात बेटोवाली है, मगर असत्त अभी तक नही गया। पीठ परकी छोरी देखके भी मुँह से यह नही निकला, कि 'ले, मुन्नी, दूध-चहा पीले।' ··अरे, निर्दयी, ऐसा ही असत्त जो रहा तेरे चित्त मे, तो अभी मसूर-दानो की गिनती के कीडे और पडेगे तुझे। कहाँ लिली छोरी के लिए गास-टुकडा पाने और अपने मन का सताप घटाने को आई थी, और कहाँ इस असत्ती ससुरी ने अपना ही कपाल फोड कर दिखाना शुरू कर दिया।

उठते-उठते भुवन मोहिनी पर आक्रोश भी बढ आया, मगर मुट्ठी मे दबा

हुआ आधा परॉठा इतना सन्तोष दे ही रहा था, कि यह गास-टुकडा तो आखिर—चाहे चोरी से ही सही—यही से प्राप्त हुआ है। ऐसा सोचते-सोचते, कौशिला की आँखो मे रायल-फोटोग्राफर बृजेन्दरसिह की घरवाली मोतिमा मस्तानी की सूरत उभर आई। मोतिमा मस्तानी के बारे मे सारे अलमोडा शहर मे यह बात प्रचलित थी, कि वह रात को नगी-धडगी, सारे शरीर पर कोलतार पोतकर घरो मे चोरियाँ करने निकलती थी। छोटी-छोटी चोरियाँ। आटा-दाल, चावल, सब्जी, घी, मिठाई और कपडे-जैसी चीजे। कई बार तो वह लोगो के हाथ पिट भी चुकी थी बुरी तरह। एक बार तो नॉर्मल हायर सेकेण्डरी स्कूल के अहाते मे चोरी करती हुई पकडी गई थी, तो वहाँ के बीस-इक्कीस जे० टी० सी० मास्टरो और दो चपरासियो ने दूसरे दिन दोपहर को ही उसे छोडा था। ··

मोतिमा मस्तानी की बाते सोचते-सोचते, कौशिला की आत्मा उसे कचोटने लगी, कि क्या लिली छोरी के लिए कौशिला भी ऐसे ही बुरे दिन देखेगी? कौशिला को ऐसा लगा, जैसे उसने मुट्ठी मे जले हुए कोयले को पकड रखा है। मुट्ठी बधने से उभरी हुई सारी नसो मे उसे खून उबलता हुआ लगा, मगर परॉठा फिर भी हाथ से नही छूट पाया। जलता हुआ कोयला भी तो अक्सर यो ही हाथ से चिपक जाया करता है।

देली लॉघने लगी कौशिला, तो भुवनमोहिनी बोली—"कौशिला दिदी, तू तो भाग्यवान है। बेटी को गले से लगाकर, मन्दिरो मे घूमने निकल गई है। मै सोलह वर्षों से इस नरक-कुण्ड मे पडी हुई हूँ। सूरज के उगने-डूबने का भी पता नही चलता मुझे तो।"

द, राँडी! परमेश्वर करे एक दिन तुझे भी मेरी ही तरह से घूमने-घामने का दिन देखने को मिल जाए।—कौशिला ने मन-ही-मन उसे गाली दी और—'अच्छा, वे मोहिनी, फिर कभी मौका लगा, तो बैठने-बतियाने आ जाऊँगी। जरा बाल-गोपालो का जतन करना।' कहते हुए—दुकान वाले हिस्से मे पहुँच गई। तभी, नीचे की तरफ से, बुकसेलर बाबू भी आ गए और बोले—"क्यो, कौशिला भौजी, जा रही हो क्या? अरे, मुझे तो कुछ जरूरी

बाते तुम से करनी है। बैठो तो सही।"

इतना कहकर, बुकसेलर बाबू मूँगफली छाँटने मे लग गए, तो एक मुट्ठी मूँगफलियाँ लिली के लिए पाने का लोभ लेकर, कौशिला बुकसेलर बाबू के पास ही खडी हो गई। बोली—"मझको मन्दिर जाने को देर हो रही है, हो बुकसेलर बाबू!"

मूँगफलियाँ छाँटते-छाँटते ही, बुकसेलर बाबू बोले—"बात असल मे यह है, कौशिला भौजी, कि मै नीचे का रूम किसी अच्छे किरायेदार को देना चाहता हूँ। यह चमेली मीरासिन तो एकदम डिसऑनेस्ट औरत है। मैंने सुना था, कि गुमानी भाई ने तुम्हारे लिए पचास रुपये महीने बाँध दिए है और ठाकुर डोगरी साहब ने तुमको घर से बाहर निकाल दिया है? अगर, तुम यहाँ मेरे रूम को लेना चाहो किराये पर, तो मुझे खुशी होगी।"

कौशिला ने सडक-पार दृष्टि डालकर देखा, धूप और घनी हो आई थी। बुकसेलर बाबू ने मूँगफली का कोठा भरकर, अपना मुँह कौशिला की ओर मोड लिया था और दोनो हाथो से सिर की जटाएँ सुलझाने लग गए थे।

कौशिला का मन हुआ, कि पूजा की थाली मे से पाँचो ताँबे के पैसे बुकसेलर बाबू के सामने फेंककर, उनकी मूँगफलियाँ खरीद ले। गोल्ल•देवता को भी आखिर छोरी का रीता उदर और माँ का दु:खी-बेबस मन दिखाई ही दे रहा होगा? मगर बाएँ हाथ मे पूजा की थाली थी, दाएँ हाथ की मुट्ठी मे आधा पराँठा दबा हुआ था और गले मे लिली की छोटी-छोटी बाँहो का घेरा पडा हुआ था। कौशिला की आँखो से आँसू बहते ही चले गए और वह—बुकसेलर बाबू से 'मै तो अपने ही पुरानेवाले मकान में रह रही हूँ।' कहती हुई-आगे को बढ गई।

× × ×

गिरजे तक पहुँचकर कौशिला ने देखा—पूरे नौ बज रहे थे। इधर गिरजे की घडी ने एक-एक कर नौ ठनाके दिए, उधर जेल का घटा भी बज उठा और कचहरी का घटा भी। कौशिला एक ठौर खडी, श्रद्धा के साथ दोनो आँखे मूँदे हुए, 'हे परमेश्वर, जै हो, जै हो, जै हो!' पुकारती रही।

तभी सामनेवाले मकान के बरामदे से किसी ने उसे पुकारा—"कौशिला बहू, कहाँ को जा रही है ? आ, जरा इधर बैठ। मेरा रघुनन्दन आया हुआ है।"

कौशिला ने आँखे खोलकर उधर की ओर पीठ फेरी तो देखा—अपने मकान के बरामदे मे खडी यशोदा सासू उसे पुकार रही थी और उनका एकदम सफेद बालो का गुच्छा धूप मे चँवर गाय की सफेद पूँछ-सा चमक रहा था।
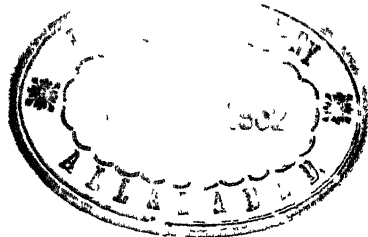
छः

सुख के दिन जिसके भाग मे लिखे होते है, देर-सबेर आ ही जाते है। यशोदा सासू के घर की ओर बढते हुए, कौशिला को सारी बाते याद आती चली गई, कि जिस यशोदा सासू को गये बरस तक कोई रोटी-पानी को पूछनेवाला नही था, सुख के दिन लौटे है उसके, तो आज भगवान् सिरी-किसन की माता यशोदा माई का जैसा आदर-सत्कार उसी को मिल रहा है। जो यशोदा सासू चाय की पत्ती और चीनी-मिसरी के लिए सात औरो के आगे हाथ-हथेली पसारती फिरती थी, अब उसी के सिर पर चाँदी का चॅवर झूल रहा है।

ऐसा सोचते-सोचते कौशिला को लगा, कि उसने दूर से बरामदे मे खडी यशोदा सासू के सिर पर चाँदी के सफेद तार चमकते हुए देखे थे। अहा, सुख-सतोष के दिन लौट आते है, तो आदमी वृद्धावस्था मे भी आँखो की पुतलियो को एक ठौर टिका दिया करता है। शोक-सताप के कीडो की खाई हुई जवानी तो आँखो मे थूक उतारने वाली होती है।

कौशिला को याद आया, कि पिछले ही बरस तक—तब तक कौशिला परिवार के साथ ही थी—यशोदा सासू कभी-कभी उसकी सास मिरदुला के पास उठने-बैठने और दु ख-सुख की कथा लगाने को आया करती थी। मगर जब यशोदा सासू अपने पाँच पाण्डवो-जैसे बेटो के होते हुए भी अन्न-ग्रास, बसन-टुकडे को तरसते रहने के अपने दु ख बखानने लगती थी, तो मिरदुला की आँखो मे आत्मगौरव की चाँदी जैसी चमचमा उठती थी—"यशोदा दिदी टाँग चीरके निकले हुए भी सभी अपने ही थोडे होते है। कुछ लोगो को तो अपने पूरब जनमो का कर्ज काटना रहता है। सतान नही जनमी ब्याज-सूत उगाहने वाले लेनदार ही जनम गए। अब जैसे साल-देवदार के पेडो-जैसे लम्बे-तडगे बेटे थे तुम्हारे, ऐसे मे तो तुमको छौंका-चुपडा मुँह के सामने ही मिलता और जिसे देती, हाथ झुकाकर के तुम ही देतीं। यह हाथ छोडने की

नौबत थोडे ही आती ? अब दस-पाँच के लिए तुमने मेरे सामने ही कई बार मुँह के बचन डाल दिए है। मगर मै क्या करूँ, दिदी, हाथ नीचे करके देने का सुख मुझे भी दुर्लभ हो गया है। गुमानी के बाबू पैसे-टको का एक-एक रत्ती हिसाब अपने ही पास रखते है । मगर मेरे मन मे तो कोप तुम्हारे बेटो के लिए उपजता है। ऐसी निर्मोही सतान से तो निपूत रहना ही भला। मेरा एक बेटा है, सातो के बराबर सुख देता है। नही तो, बापरे, जैसा वज्र मेरे सिर पर गिरा था और बच्चादानी बेकार हो गई थी, ऐसे मे मेरा बेटा भी निर्मोही निकल जाता, तो हो गया था मेरा कल्याण। सब भगवान कृष्ण महाराज की कृपा है मेरे ऊपर तो। उन्ही की मोहन मुरली-जैसी बजती रहती है और खसम-बेटे दोनो बस मे रहते है। तुम्हारे-जैसे निगरगड और निर्दयी खसम-बेटे जो मेरे होते, तो उनके सिर खड्ड मे दबाकर ही मुझे शाति मिलती।"

"मिरदुला लली, मेरे बेटो को और उनको गाली मत दे। जैसे भी है, उनसे एक छाँव-भरम तो है।"—यशोदा सासू की आँखो मे आँसू उतर आते थे, पलको की जडो मे उनकी गाँठे-जैसी पड जाती थी। ·· और अतरव्यथा की कथा अनकही रह जाने पर, अनाज की भरी कुथली-जैसी आँखे खाली नही हो पाती थी। यशोदा सासू तो मिरदुला की प्रताडना से पथरा जाती थी, मगर मिरदुला फिर भी भगवान् कृष्ण महाराज का भजन-जैसा गाती ही रहती थी—"द, मेरे कहने से कौन-सी तुम राँड हो जाओगी, दिदी ! मगर, मै तो फिर भी यही कहूँगी, कि बेटा हो तो सर्वण कुमार-जैसा, नही तो, कोख बाँझ ही भली।"

धेली-टके की आस लेकर आई हुई, यशोदा सासू आँखो मे आँसू लेकर लौटने लगती थी, तो कौशिला उसे अपने कमरे मे खीच ले जाती थी—"सासू, भरे हुए कलश-जैसे लेकर कहाँ वापस जा रही हो ? आओ, एक घुटुक चहा तो पी जाओगी।"

चाय की घूँट के साथ, कौशिला की आत्मीयता मिली, तो पलको की जडो मे पडी हुई गाठे अपने आप खुल गई और अतर्व्यथा की कथा ऐसे

वाणी के वचन पा गई, जैसे मन की धरती की किन्ही परतो से कोई भ्रमुख[1] फूट पडा हो—"कौशिला बहू, तेरे बहू-बेटे तुझे फल जाएँ, तुझे गोल्ल देवता दाहिने हो जाएँ, लली ! जैसा मान-सम्मान तू मुझ हजारो की ठुक-राई हुई बुढिया को दे रही है, ऐसा ही सुख-सतोष देने वाले तेरे सकट के दिनो मे तुझे भी मिल जाएँ, बहू ! अपने रूखे कपाल की कथा तुझसे क्या कहूँ, बहू ? मेरी तो वही गत हो गई है, कि गैया-मैया के लिए तो उनके थन लटकने वाली लोथ से ज्यादा कुछ नही। दुनिया के देखने को पाँच पाण्डव-जैसे है, मगर मुझे अधार देनेवाला कोई नही। चारो बडे, एक-एक करके, अपनी घरवालियो की पूँछ पकड के पूना-बम्बई-पटना चले गए है। कुती मैया को एक दुरोपदी से आँचल-भर सुख था, मेरी बी० ए० ऐम० ए० बहुओ ने सिर्फ खडी नमस्ते के अलावा और कोई चीज मुझे नही दी। मिरदुला बडी भागवान है, जो तुझ-जैसी सुलक्षणा बहू मिली है उसे।"

'तुझ-जैसी सुलक्षणा' कहते हुए, यशोदा सासू ने उस दिन कौशिला के सिर पर हाथ फेरा था, तो कौशिला की आँखो मे एक झिरमिरी-जैसी टुल-टुला आई थी, कि 'अहारे, ससार का चक्कर भी कैसा बिचित्तर है ? कही सिर सलामत, तो पगडी फटी हुई और कही पगडी तुर्रेदार तो सिर नाश-पीटा। यशोदा सासू अपनी बहुओ का उलटे हाथो का भी सुख सराहती थी, तो फैशनेबुल बहुओ ने बेटे छीन के अँगूठे दिखा दिए। कौशिला अपनी सासू के चरण भी पूज सकती थी, मगर सासू ने सौतिया डाह से भी ज्यादा कोप दिखाया और शुरू से ही छयोडी[2]-जैसी समझ के लताडती-फटकारती रही।

"क्यो, बहू, तू क्यो उदास हो गई है ?"—यशोदा सासू ने पूछा था। एकाएक कौशिला को मुरझाते देखकर, फिर बोली थी—"अरे, एक कीडा-जैसा तेरे कलेजे के काठ मे भी लगा हुआ है। तू तो सौतिया-भाग लेके आई

1 पहाडों पर कहीं-कहीं भूमि में पानी के सोते अँखुओं की तरह फटते रहते है, इन्ही को 'भुमुक' (भुमुख) फूटना कहते है।

2. दासी।

है, एक-न-एक भारी तख्ता तेरी पीठ पर चढा ही रहता है। पहले सावित्री भोटियानी आई थी, तो उसने तेरा हक मारा था। अब तारारानी कपाल मे तिरपुण्ड-जैसी टिकी हुई है। खैर, ईश्वर के घर से माँगे हुए को रोना-झीकना ठीक नही होता। तेरी दीठ तो अब तेरे आने वाले दिनो पर रहनी चाहिए, बहू ! भागवती है तू। राजकुँवर-जैसे बेटो की गृहस्थी झूलने-फूलने लगेगी, तो चँवर गाय की जैसी पूँछ हिलाती हुई तू ही सारे घर मे राज-पाट चलाएगी।"

"द, सासू ! एक राजपाट चलाने का सुख तुम्हे मिल रहा है, तुम्हारे पाँच-पाण्डवो से, और अब एक मेरे सुरेन्दर-नरेन्दर की जोडी मुझे सुख देगी।" कौशिला ने फीकी हँसी बिखेर दी थी—"महतारी के हिस्से मे तो जनमाने और गू-मूत पोछने का पुण्य ही आता है, सासू, बाकी सारे सुख तो आजकल की पढी-लिखी क्रिस्तानियाँ ही पाती है। इस घोर कलजुग मे बहुत लम्बी आशा लगा के रहना बेकार ही है, सासू !"

"बहू, सतान आखिर सतान ही होती है। उसी से तारण-तरण भी होता है। रघुनन्दन के बौज्यू का दु ख नही देखा जाता, इसी से ठौर-ठौर हाथ फैलाने आ जाती हूँ, मगर अपने गाँठ की तो कानी कौडी भी भली ही लगती है। रघुनन्दन के बौज्यू भी कहते है, कि नही भेजते है ससुरे रुपया-टका, नही भेजे, एक बार आखिरी समय मे आकर चार भाई अपने कधो पर मेरी मिट्टी को चढा ले और पाँचवाँ भाई आगे बढकर के 'सस्कार' दे दे, तो सोच लूँगा, कि इतने मे ही पालने-पोसने का सारा ऋण चुकता पाया।"—यशोदा सासू बोली थी—"और क्या, बहू, अब बेटे खर्च नही देते, तो उनके नाम पर छाती पीट-पीट के हाय-हाय करने से ही हमे कौन-सी राजगद्दी मिल जाएगी। चौथा श्याम नन्दन तो कभी-कभार सुध लेता ही रहता था, मगर एक इसी बरस उसने भी पीठ फेर रखी है।"

इतना कहकर, यशोदा सासू ने एक लम्बी उसाँस भरी थी और दूर तक अपनी भरी-भरी आँखो की दीठ घुमा दी थी, जैसे बेटो की फिरी हुई पीठे साफ-साफ दिखाई दे रही हो। फिर, आँसू पोंछते हुए, बोली थी—"रघुनन्दन

को तूने देखा तो है न, बहू ? बाकी के चार तो अपनी-अपनी महारानियो के साथ मौज कर रहे है, मगर मेरा लाडला बेटा रघुनन्दन दो बरसो से लापता है, बहू ! इण्टर पास करके यहाँ से निकला था। आगे पढाने की हम लोगो मे अब ताकत ही नही रह गई थी। रघुनन्दन के बौज्यू के पाँव सुन्न पड गए थे। जर-जेवर सारा बिक चुका था। यहाँ से निकलते समय मुझसे कहता था छोरा, कि 'माँ, मेरे माथे पर हाथ रख दे। तेरा आशीर्वाद साथ लेके जाऊँगा, तो मुझे अच्छा रास्ता मिलेगा और तुम्हारे तथा पिताजी के चरणो मे चित्त लगा रहेगा।' अब हम दोनो के चित्त कलप रहे है उसके लिए। बारी-बारी से सभी भाई-भौजियो की देलियो के चक्कर भी लगाए थे छोकरे ने, मगर जो निर्मोही माता-पिता के नही हुए, वो भाई को क्या सुख देते ? आखिरी चिट्ठी मे रघुनन्दन ने लिखा था, कि 'पराये आसरे पर रोजी-रोटी पाने की आशा करने से मर जाना बेहतर होता है, माँ ! मै अब अपने पसीने को परखने जा रहा हूँ। चरण पूजने योग्य सामर्थ्य जुटा सका, तो चला आऊँगा।' द, उस बावले छोरे का पसीना मुझे टोकेगा। कोरा-रीता भी चला आता, तो आँखो से देखके ही हमारा हिया सुख से भर जाता, बहू ! अब उसके बौज्यू गिनती के दिनो के मेहमान है। एक तो वृद्धावस्था ठहरी, ऊपर से वात-पित्त का पीटा हुआ शरीर और खाने के नाम पर रूखा-सूखा और वह भी अधपेट। देह दिन-पर-दिन कटी हुई घास-जैसी सूखती जा रही है। मिरदुला के पास आई थी, कि दस-पाँच रुपये ऊधार माँग लूँगी, तो उनके लिए कुछ फल-फूल जुटा लूँगी, मगर उसने तो ऊपर ही ऊपर से कण्ठी-जैसी फेर के, घुत्ता दिखा दिया। खैर, उस बेचारी का भी क्या दोष है ? अपनी ही लोथ को दया-ममता नही फूट रही है, तो अराए-पराए क्या आसरा दे ? आँखो से ही आँसू नही फूटे, बहू, तो घुटनो से कहाँ फूटेगे ?"

और यशोदा सासू बिलख उठी थी।

कौशिला का भी मन भर आया था। सोचती रही थी, कि घर-घर मिट्टी के चूल्हे है। वह तो अपने को दुखियारी समझती है, मगर यशोदा सासू का दुख उसने भारी है। उसे तो अभी सिर्फ सास-ससुर और खसम की

प्रताडनाओ का ही दुःख है, बेटे तो सयाने नही हुए, सो भविष्य की आशाएँ टिकी हुई है, कि एक भी सपूत निकल गया, तो दिन कट ही जाएँगे।

यशोदा सासू जाने लगी थी, तो कौशिला ने रोक लिया था, "एक मिनट ठहरो, सासू !" और फिर अपने सदूक मे से राई पर धनिये के बीजो की तरह जोडे हुए आठ रुपये निकाल लाई थी। यशोदा सासू को देते हुए बोली थी—"मै तो औरो के हाथो के नीचे पडी हुई हूँ, सासू ! इकन्नी-दुअन्नी करके जोडे है।"

यशोदा सासू ने रुपये पकड लिए थे। कौशिला ने देखा था, कि यशोदा सासू के होठ उसे आशीर्वाद देने, उसके प्रति कृतज्ञता जताने के लिए तालाब से निकलकर, सूखी धरती पर खडे मेढक के कण्ठ की तरह बिलबिलाने लगे थे, मगर शब्द एक भी नही फूट पाया। डबडबाई-आँखो से कौशिला को देखती, यशोदा सासू चुपचाप चली गई थी।

× × ×

वह दिन और एक यह आज का दिन है।

कैसे-कैसे दुर्दिन कौशिला ने देखे, मगर यशोदा सासू से अपने रुपये माँगने नही गई। बीच मे कीर्तिनन्दन जी जागेश्वर[1] जाते रहे थे। तीन बेटे आए थे, लोक-लाज रख गए थे। कोण-क्रिया, गति-क्रिया करके, तेरहवे दिन पीपल छूकर, अपने-अपने ठिकाने को लौट गए थे। यशोदा सासू के लिए भी रूखी-सूखी रोटी का बदोबस्त कर गए थे और घर-बाडो की देख-भाल का दायित्व डाल गए थे।

पिछले ही महीने पारबती लालन के यहाँ जब चावल माँगने जा रही थी कौशिला, तो लाला बाजार के दोराहे के पास उसे यशोदा सासू खडी दिखाई दी थी। मन हुआ, दुखियारी की कुशल-बात पूछ आए, मगर इधर कौशिला ने पाँव बढाया था और उधर यशोदा सासू, उस बुढापे मे भी घूँघट निकाले, अपसे घर की ओर बढ गई थी। कौशिला यशोदा सासू की व्यथा समझ गई थी। दो बरस बीत गए, आठ रुपये लौटा नही पाई है, सो दीठ चुराती है। अरे, कौशिला का भाग जरूर फूट गया है, मगर आँखे नही फूटी

1 एक श्मशान।

है। जो यशोदा सासू रूखी-सूखी को तरस रही थी, उससे रुपये क्या वापस माँगती ? उसने तो देते समय यही सोच के दे दिए थे, कि चलो, एक भलाई यही हाथ लग गई।

···ग्रौर उस दिन घूँघट निकाल कर, फल-चोर बालक की तरह रास्ता काटनेवाली यशोदा सासू ने ग्राज, ग्रपने सिर को चाँदी-तार के चँवर की तरह झुलाते हुए, उसे पुकारा था—कौशिला बहू···

इसी सोमवार को कौशिला ने किसी के मुँह सुना था, कि यशोदा सासू का सबसे छोटा रघुनन्दन कलकत्ता से घर ग्राया है। हे गोल्ल देवता, तेरी लीला ग्रपरम्पार है। जिस बेटे की देह देखने को यशोदा सासू तरस रही थी, वही रघुनन्दन सात वर्षो के बाद लौट ग्राया था। कलकत्ता शहर मे किसी बडी ठौर उसकी नौकरी लग गई थी ग्रौर देबा सवाणी कह रही थी, कि यशोदा सासू की तो सोने की गेद लौट ग्राई है। उस समय एक इच्छा-जैसी जागृत तो हुई थी, कि वह भी यशोदा सासू को देख ग्राए, फिर ग्रपनी ही परेशानियो मे उलझकर रह गई थी।

गिरजे के दोराहे से लगा-लगा यशोदा सासू का घर था। कौशिला को ग्रचानक ध्यान ग्राया, कि ग्ररे, बहुत बडे शहर से रघुनन्दन लौटे हैं। उसे इस दरिद्र वेश मे देखेगे, तो क्या सोचेगे ? यशोदा सासू के यहाँ जाना पडेगा जानती, तो कम-से-कम लिली को तो नया फ्रॉक पहना लाती। देवता के दरबार मे दिखाने के लिए जो कपडे पहने है, उनसे मनुष्यो के सामने तो झिझकना ही पडेगा ! हर कोई यही पूछेगा, कि ग्राज ऐसे फटे-पुराने भेष मे कहाँ जा रही है कौशिला। ग्रब किस-किस के सामने ग्रपना महाभारत सुनाती फिरेगी वह।

बारामदे के नीचे पहुँचकर कौशिला ठिठक गई। मन हुग्रा इस समय लौट चले। गोल्लदेवता के दरबार से लौट ग्राएगी साँझ घिरने से पहले ही, तो कपडे बदलकर, यशोदा सासू के यहाँ भी हो ग्राएगी। नही तो कल सबेरे ही सही। कल की बात सोचते हुए, ग्रचानक ही कौशिला को ध्यान ग्राया, कि ग्ररे, ग्राज तो शनिश्चर है। शनिवार का दिन देवता के मन्दिर

मे जाने के लिए जितना शुभ माना जाता है, किसी ग्रादमी के घर जाने के लिए उतना ही ग्रशुभ ग्रौर ग्रनिष्टकारक भी। कौशिला को इस बार फिर ग्रपनी मिरदुला सासू की स्मृति हो ग्राई, जो किसी बाहर के ग्रादमी के घर मे शनिवार को ग्रा जाने पर, एकदम ग्रशगुन-जैसा मानती थी ग्रौर, ग्राने वाले के लौट जाने पर, उसका नाम ले-लेकर, सात बार थू-थू-थू-थू करते हुए, घर की देहली पर ग्रपना बॉया पॉव पटकती थी।

"क्यो बहू, नीचे क्यो रुक गई है, लली ?"

कौशिला ने देखा, बरामदे की बल्ली का सहारा लेकर नीचे की ग्रोर झुकी हुई यशोदा सासू उसे पुकार रही थी। कौशिला हाथ की थाली ग्रौर पीठ की लिली को सॅभालते हुए, ऊपर को दीठ उठा कर बोली—"सासू पैलाग! मैने देबा सासू के मुख से सुन लिया था, कि रघुनन्दनज्यू घर ग्राए है। ग्रच्छा हुग्रा सासू, तुम्हारा पुण्य फल गया है। मै ग्रब कल ग्राऊँगी। ग्राज तो शनिश्चर है।"

"ग्ररे, लली! तेरे लिए क्या शनिश्चर ग्रौर क्या इतवार? बावली कही की। ग्ररे, भला, ग्रपने सकट के दिनो मे काम ग्राने वालो से भी कही तिथि-वार का फेर माना जाता है? ग्रा, ऊपर ग्राजा।"—यशोदा सासू ने ग्राग्रह किया। कौशिला क्या करती? 'ग्रच्छा ग्राती हूँ, सासू!' कहते हुए, सीढियो की ग्रोर बढ गई। निचली ही सीढी पर हाथ की थाली रख कर, लिली को कौशिला ने पीठ पर से नीचे उतार लिया ग्रौर, ग्राधे परॉठे को ग्रपनी कुर्ती की जेब मे रखकर, लिली के उलझे हुए बाल ग्रौर झगुली की सिलवटे ठीक करने लग गई। ग्रपनी धोती भी जरा ढॅग से पहनते हुए, कौशिला ने फिर थाली ग्रौर लिली को उठा लिया।

ग्रदर कमरे मे पहुंची कौशिला, तो विस्मय से सारे कमरे को देखती ही रह गई। लम्बी-चौडी ग्रौर नई दरी बिछी हुई थी नीचे ग्रौर उस पर एक बडी चारपाई लगी हुई थी, जिसमे बढिया बिस्तरा बिछा हुग्रा था। ग्रलमारी मे भी बढिया टी-सेट ग्रौर स्टेनलेस स्टील के बर्तन रखे हुए थे। कमरे के मध्य मे एक छोटी-सी, मगर खूबसूरत फोल्डिग-टेबिल लगी

हुई थी। टेविल के इर्द-गिर्द दो कुर्सियाँ लगी हुई थी। टेबिल-क्लॉथ पॉवो तक झूल रहा था और कुर्सियो पर बहुरगी गद्दियाँ और पीठझालर खिल रहे थे।

कौशिला को लगा, जैसे वह यशोदा सासू के घर नही, बल्कि किसी डिप्टी कलक्टर के घर पहुँच गई है।

"आ, लली!"—यशोदा सासू ने कौशिला को, प्यार से अपनी बॉहो मे भरते हुए, बडी देर तक गले से लगाए रखा। फिर लिली को गोद मे लेकर उसे बहुत प्यार के साथ कई बार चूमा—"इस नातिनी का तो पुरुषो का जैसा चौडा ललाट है, बहू! बडी भागवान निकलेगी।"

कौशिला का मन हुआ, कि 'द, सासू, न जाने कब होती है छोरी भागवान। आजकल तो पेट-भर दूध-रोटी को भी तरस रही है और झगुली की गत तो तुम देख ही रही हो।' मगर कह नही पाई। रघुनन्दन सामने चारपाई पर बैठा हुआ था। कौशिला ने देखा उस ओर, तो हाथ जोड दिए—"पैलाग, गुरू!"

रघुनन्दन लजा गया। आगे बढकर, कौशिला के पॉवो की ओर हाथ झुकाकर, बोला—"प्रणाम कहने का कर्त्तव्य तो मेरा है, कौशिला भाभी! तुम तो उमर और रिश्ते मे मुझसे जेठी हो।"

एकदम बर्फीले कुरते-पायजामे मे रघुनन्दन का स्वरूप सफेद सूरजमुखी-सा खिला हुआ था। कौशिला तो एकदम अटपटा गई, कि हे राम, कैसे फली डाल-जैसे झुकते है रघुनन्दन ज्यू? कहाँ ये पूज्य ब्राह्मण और कहाँ मै परित्यक्ता अभागिनी। यशोदा सासू कौशिला का सकोच भॉप गई। हँसते हुए बोली—"रघुनन्दन तुझसे छोटा ही तो है, बहू! तू मुझसे छोटी है, तो जब दीठ-भेट होती है, तभी तू एकदम पॉवो पर हथेलियाँ बिठा देती है। मैने तो कभी नही टोका तुझे? लली, भलाई का नाता सबसे बडा होता है, जात-बिरादरी के नाते खोखले होते है। जैसा उपकार तूने मेरे साथ किया है, उसके लिए तो मैं सात जन्मो तक तेरी ऋणी रहूँगी, बहू! अपने उपकारकर्त्ता शूद्र के पॉव छूना भी भला ही है। मेरा रघुनन्दन कहता है,

कि 'माँ, मै तेरे लिए कौशिला भाभी-जैसी ही दयावान बहू लाऊँगा।'···
जब मैंने बताया, कि कैसे सकट के क्षणो मे कौशिला बहू ने मेरी लाज रखी
थी, तो रघुनन्दन कहता था, कि 'मै बेटे का कर्त्तव्य पूरा नही कर पाया,
माँ ! कौशिला भाभी ने बेटी की तरह तेरा मान रख लिया। मैं उन्हे हमेशा
दीदी की तरह प्यार करूँगा।' अरे, तू बैठ तो सही। खडी कब तक
रहेगी ?"

कौशिला तो यशोदा सासू और रघुनन्दन के आत्मीयतापूर्ण और समा-
दर-भरे व्यवहार से एकदम गद्‌गद्‌ हो उठी थी। उस दिन की जरा-सी
भलाई के बदले मे आज इतना घना सत्कार मिलेगा, ऐसी तो कौशिला ने
कभी कल्पना भी नही की थी।

कौशिला को बिठाकर, यशोदा सासू दूसरे कमरे मे चली गई—"तू
बैठ, बहू, मैं तेरे लिए चाय लाती हूँ।"

इधर रघुनन्दन ने लिली को गोद मे ले लिया था और उसे प्यार करने
लगा था। कौशिला सिटपिटा ही रही थी, कि रघुनन्दन ने पूछ लिया—
"भाभी, फटी फ्रॉक क्यो पहना रखी है, बिटिया को ? एक लेफ्टीनेण्ट की
लडकी और यह फटी-पुरानी फ्रॉक ? तुमने भी एकदम कुलियो की औरतो
का जैसा भेष बना रखा है।"

कौशिला के कलेजे मे एक त्रिशूल-जैसा चुभ गया। आत्मा तिलमिलाने
लगी, कि जैसा लेफ्टीनेण्ट खसम है और जैसे अन्यायी-निर्मोही सास-ससुर
है और जैसे दुर्दिन इन लोगो के कारण उसको और लिली छोरी को काटने
पड रहे है, अपनी इस दुख-गाथा को सुनाए और लिली की फटी-पुरानी
झगुली, अपनी फटी-पुरानी धोती तथा दरिद्दर भेष का सारा यथार्थ रघु-
नन्दन के आगे उघाड दे। मगर रघुनन्दन की सौम्य-सरल मुखाकृति को
देखकर, कौशिला हिचकिचा गई, कि लला के सामने ऐसे अपने दु ख-दरि-
द्दरो का बखान करना ठीक नही। एक मद्धिम-सी हँसी हँसते हुए, बोली—
"द, लला अब रगीले-चगीले कपडे पहनने की उमर ही कहाँ रह गई है ?
मै तो ऐसे ही आज जरा चितई के गोल्ल-मदिर की ओर जा रही हूँ। बिहान

तारा उगते ही उठ गई थी। नहाते-धोते और चलने की तैयारी करते-करते फटा-पुराना जैसा कपडा हाथ आया, वही पहन लिया। छोरी को भी पुरानी ही झगुली पहना बैठी। आधे रास्ते मे आकर ध्यान आया, तो सोचा, लौटने से तो मदिर तक समय से पहुँचना कठिन हो जाएगा।"

रघुनन्दन की शकाओ का समाधान नही हुआ था, क्योकि माँ से उसको कौशिला की स्थिति का थोडा-बहुत परिचय मिल गया था, मगर यह सोच-कर चुप हो रहा, कि कही कौशिल्या भाभी का मन न दुखे। यशोदा सासू एक गिलास मे चाय, एक गिलास मे लिली के लिए दूध ले आई थी और एक थाली मे कई प्रकार के बिस्कुट और मेवे-मिठाई।

"ले, बहू, जरा मुँह मीठा कर ले।"—यशोदा सासू ने बडे प्यार के साथ कौशिला से आग्रह किया और रघुनन्दन की गोद से लिली को भी उतार लिया—"आ, नातिनी, तू भी लड्डू-बिस्कुट खाएगी।"

कौशिला ने देखा, कि आज यशोदा सासू की धोती-कुर्ती ही नही बदली है, मुख की रेखाएँ भी बदल गई है। पहले यशोदा सासू के चेहरे से हमेशा एक दयनीयता, एक करुणा-जैसी झलकती रहती थी। उसके कपाल-कपोलो की रेखाओ का रीतापन देखकर लगता था, कि उसकी समूची देह-आत्मा का खोखलापन, अस्थियो को भेदता हुआ, इन सूखी तोरई के रेशो-जैसी झुर्रियो मे उतर आया है। यशोदा सासू मुँह भी नही खोले, तब भी ऐसा लगता था, जैसे एकदम लिचड याचना इस दरिद्दर बुढिया के मुँह से बराबर फूटी चली जा रही है। मगर, आज यशोदा सासू के सदैव मलीन रहनेवाले मुख पर जैसे खून की डोरियाँ उछली हुई थी। एक आनन्द-उल्लास झुर्रियो मे भर गया था और, याचना की करुणा तथा ग्लानि की जगह, एक गौरवपूर्ण चमक उभर आई थी, जैसे किसी सरोवर के निर्मल जल की सतह पर पडी हुई काई की परत को काटते हुए, कोई महाश्वेता बत्तख दूर तक तैरती चली गई हो।

कौशिला सोचने लगी, कि सुख-सन्तोष हो, तो बुढापा भी चन्द्रमा-जैसा खिल उठता है। कभी ऐसे ही, श्वेत चँवर-जैसी चाँदी-तारो की लटी

भुलाते हुए, औरो के आगे मान-सत्कार के टुकडे रखने के दिन उसके भी आ सकेंगे ?

कौशिला यशोदा सासू के ही गरिमा-भरे रूप-स्वरूप मे खोई हुई थी, कि रघुनन्दन ने पुकारा—"क्यो भाभी, तुम तो एकटक माँ को ही तकती चली जा रही हो ? चाय भी तो पियो।"

कौशिला बोली—"हाँ, लला, यशोदा सासू को देख रही हूँ। देख रही हूँ, कि सपूत के पाँव घर मे पडते ही कैसा सुख-सतोष मिल जाता है पितरो को। आज यशोदा सासू का रूप-स्वरूप एक अलग ही शोभा दे रहा है।"

बोलते-बोलते ही, कौशिला ने चाय का गिलास हाथ मे उठा लिया था, मगर फिर एकाएक याद आया, कि गोल्ल देवता के दरबार मे निर्जला एकादशी का जैसा अखण्ड उपवास लेकर जाना है उसे। चाय का गिलास नीचे रखते हुए, बोली—"अरे, मैं भी बावली हो गई हूँ। मेरा तो आज उपास का दिन है, सासू, मै कुछ नही लूँगी इस समय। यह चाय तुम पी लो, लला !" इतना कहकर, कौशिला लिली को दूध पिलाने लग गई। यशोदा सासू बोली—"बाल-गोपालो वाली है तू, सो तेरा व्रत-उपवास खण्डित करने की बात कैसे कहूँगी, मगर, इस नातिनी को तो पेट-भर दूध पिला ले, बहू ! और थोडा-सा नैवेद्य-जैसा अपने आँचल मे बाँध ले। मन्दिर पहुँचकर, पूजा करने के बाद उपवास तोडेगी, तो पानी पीने का सहारा हो जाएगा।"

कौशिला 'ना-ना' करती रही, मगर यशोदा सासू ने थोडे-से बिस्कुट, मेवे और मिठाई उसके आँचल के एक छोर मे बाँध दी—"पितरो के हाथ की चीज के लिए ना-ना नही करते, लली ! अरे, तेरा तो मेरे हाथ-मुँह से छीनकर खाने का भी हक है, बहू !"

कौशिला ने स्वय कुछ खाया-पिया नही, मगर लिली को दूध-बिस्कुट मेवे और मिठाई से अघाया देखकर, उसकी आँखे तो तृप्त हुई ही, मन भी भर आया—"द, यशोदा सासू की उमर सौ बरस की हो जाए। भूख से एकदम लुतलुतान हो गई थी छोरी, दूध-मिठाई से मगन हो गई है। अब तो बुखार भी टूट गया होगा।"

छाती से लगाए रही हूँ मै। रघुनन्दन के बौज्यू के लिए ब्रॉडी लेनी थी, वात-शीत से सुन्न देह ठहरी। जीभ चटखा रहे थे, कण्ठ सूख रहा होगा उनका। नही देखा गया, इसीसे तेरी सासू के आगे भी हाथ फैलाने पहुँच गई थी। ऐसे ही क्षणो मे, न-जाने कितनो के आगे हथेली पसार चुकी हूँ मै। उस दिन तो निराशा और दु ख से मेरे प्राण टूट रहे थे, कि तूने अमृत-जैसा घोल दिया, लली! ब्राडी और मौसम्मी लेकर लौटी घर। जैसे-जैसे उनके कण्ठ मे घूँट उतरती थी, मौसम्मी का रस उतरता था, तेरे पॉव पूजने को चित्त हो आता था, बहू! मै अभागिनी ऐसी रही, आज तक तेरे किसी काम नही आ सकी। परसो ही मेरा रघुनन्दन लौटा है। आज-कल मे मै तेरे पास आने ही वाली थी। तू नही जानती, बहू, तुझ से कैसे-कैसे दीठ चुराई है मैने। एक दिन तुझको देखा था· ''

"मैने भी देखा था, सासू! मगर, मै तो सिर्फ पॉव छूने आने वाली थी।" कौशिला की आँखो मे भी आँसू भर आए थे—"सासू, तुम्हारा जैसा मोहिल और कोमल स्वभाव है, जैसे तुम मुझे बहू-लली पुकारते समय ममता की मिसरी-जैसी घोल देती हो, ऐसा लाड-प्यार तो मुझे कभी अपनी सगी महतारी और सासू से भी नही मिला। मै ये रुपये वापस नही लूँगी, सासू!"

"अरे, वावली, तू रख तो सही। फिर कभी मुझे जरूरत होगी, तो तुझसे मॉग लूँगी। और देख, अपनी मॉ-सासू की ठौर समझती है मुझे, तो बहुत शील-सकोच भी मत दिखाया कर। बेटी-बहू की तरह आकर, अपना दु·ख-सुख कह जाया कर। तेरे लिए मूठ बॉधे नही रहूँगी, लली!"—यशोदा सासू ने रुपये कौशिला की कुर्ती की जेब मे खोस दिए—"रघुनन्दन से तेरे लिए मैंने धोती भी लिवा रखी है। लौटते मे ले जाना। नातिनी को ऐसे लावारिशो की जैसी औलाद बनाकर मत रख, बहू!"

कौशिला तो एकदम गूँगी-सी हो उठी, यशोदा सासू के प्यार के आगे। दुबारा चरण छूने को झुकने लगी, तो यशोदा सासू ने गले से लगाकर टोक दिया—"तेरे हाथो मे पूजा की थाली है, बहू! नारायण की पूजा का थाल नर-नारियो के चरणो मे नही झुकाया करते।"

सात

एक मोड पार करने तक तो कौशिला पीछे मुडकर नही देख सकी। उसे लगा, यशोदा सासू उसे ममता-भरी आँखो से मोड-ढलती देख रही होगी। इस बार कौशिला को अपने पॉव भी भारी-भारी लगे—हे राम, कही यशोदा सासू ने कुर्ती की जेब मे पडा हुआ पराँठे का टुकडा तो नही देख लिया होगा ? इससे तो अच्छा यही था, कि कौशिला अपने हाथ मे ही रुपये थाम लेती। अब यशोदा सासू सोचती होगी, कि मिठाई-बिस्कुटो के लिए बहुत ना-ना कर रही थी। रुपये थमाने को कहा, तो हाथ पीछे सरका रही थी, मगर मन्दिर को जाते समय भी बासी रोटी का टुकडा जेब मे ले जा रही है !

ग्लानि से बिरबिरा उठी कौशिला, तो दाँया हाथ कुर्ती की जेब के अन्दर डलकर, पराँठे का टुकडा निकालकर दूर फेंक दिया, मगर यह जरूर देख लिया, कि कही चुपडे पराँठे से चिपककर, कोई नोट न चला जाए, या कि कही नोटो मे घी के दाग तो नही लग गए। ऐसा करते समय, कौशिला का आश्चर्य अपनी ठौर नही रहा, जब उसने देखा, कि दस-दस के नोट दिखाई पड रहे है। पहले तो कौशिला, कई कदम आगे बढने तक, नोटो को हाथ मे थामे ही रह गई, मगर दूसरा मोड ढलकते ही गिनने का लोभ वश मे नही रख सकी। गिने, तो पूरे पच्चीस रुपये थे।

हे, गोल्लदेवता !—कौशिला की आत्मा से श्रद्धा-भरी कृतज्ञता बाहर फूट पडी। गोल्लदेवता पर उसकी आस्था अब और घनी हो गई थी। कल तक 'बाल पोथी' बेचने की नौबत आई हुई थी और आज पूरे पच्चीस रुपये उसके पास थे। कौशिला को लगा, कि माघ की हिमानी बयार मे ही जो उसने स्नान-ध्यान करके, गोल्लदेवता का पुण्य स्मरण किया था, उसी का प्रसाद उसे मिला है। अरे, नारायण के दरबार से भी कोई रीते हाथ लौटता है ?

.हे, परमेश्वर !—कौशिला ने नोटो को गुलदावरी के फूल की तरह गोलाकार बनाकर, अपने माथे से लगा लिया और फिर—लिली के माथे से छुआकर, 'ले चेली, ये रुपये परमेश्वर ने तुझ छोरी के ही पालन-पोषण को भेज रखे है।' कहते हुए—कुर्ती की जेब मे वापस रख लिए।

फिर लम्बे पाँवो से सडक काटते हुए कौशिला आगे बढने लगी और उसने निश्चय कर लिया, कि रास्ते मे किसी से बात-चीत नही करेगी। माघ का छोटा दिन और छोटा पडता चला जा रहा था। कौशिला की छाया बराबरी पर आ गई थी।

× × ×

चलते-चलते कौशिला की आँखो मे एक ओर भुवनमोहिनी भोटियानी का और दूसरी ओर यशोदा सासू का रूप-स्वरूप उभरता ही रहा। भुवन मोहिनी भोटियानी के लिए तो कौशिला के कलेजे से यही पुकार निकलती रही, कि अरे, कमनियत ससुरी ! सात बेटो वाली थी, तो भी तुझसे गास-टुकडा मेरी बेटी के लिए नही दिया गया। देख लेना, तेरे बेटे भी ऐसे ही .हीन नियत के बनेगे और आखिर को तुझे भी यशोदा सासू की तरह हाथ फैलाने पडेगे। अरे, यशोदा सासू की बराबरी तू कमनियत सुसरी क्या करेगी ? कैसी दया-ममता है उनकी आत्मा मे ? लिली के आगे दूध-बिस्कुट-मिठाइयो का ढेर लगा दिया। ऐसी खुली हुई मुट्ठी है, इसीलिए आज परमेश्वर ने आँचल-भर सुख-सतोष दे रखा है। तेरे सात सुँवर के जैसे घेटे है, फिर भी मुँख मे मक्खियाँ घूम रही है और आँखो से दरिद्दर टपक रहा है। यशोदा सासू सत्तर-अस्सी के पार पहुँचकर भी काँसे की थाली-जैसी चमचमा रही है।

फिर कौशिला की आँखो मे ही जैसे एक काँसे की थाली उभर आई। और कौशिला ने, 'हे परमेश्वर !' पुकारते हुए, अपनी आत्मिक-निष्ठा का निचोड-जैसा आँखों मे एकत्र करके, अपने हाथ की थाली मे रखे फूल-बताशे-बातियो, तेल की कटोरी और ताँबे के पैसो को देखा।' 'और उसे लगा, कि तेल की कटोरी मे उसके आने वाले दिनो की छाया उभर रही है। यशोदा

सासू की तरह ही, उसकी लटी के बाल भी एकदम सफेद हो चुके है। और सुरेन्दर-नरेन्दर सयाने हो चुके है।···ग्रौर लिली किसी ऊँचे, भले घराने मे ब्याही जा चुकी है।·· और वह बहुओ को घर-गृहस्थी के कामो के सलीके सिखा रही है, कि 'ग्ररी, ओ छोटी वहू ! जरा चपटी हथेली से तेल सुखा, लली, इतने कोमल बालको की देह झोल पडी हथेली से नही मलाशी जाती।'·· या कि, 'ग्ररी, ओ बडी बहू ! साँझ के समय झाड़ू हाथ मे नही लिया करते, लछमी, इससे घर मे दरिद्दर पनपता है।'

ज्यो-ज्यो कौशिला अपनी भरी-पूरी गृहस्थी की वेदी पर खुद बुढापे मे चाँदी की सफेद मूरत की तरह बैठी रहने के सपने बुनती जा रही थी, त्यो-त्यो रास्ते के मोड भी ढलकते जा रहे थे। भैरव भट्ट के, 'क्यो हो, सुरेन्दर की माँ, कहाँ को प्रस्थान हो रहा है ?' पूछकर, टोकने पर ही कौशिला को पता चला, कि वह नारायण तेवाडी देवाल के दोराहे तक आ पहुँची है।

भैरव भट्ट का टोकना कौशिला को बहुत खटका, मगर पूजा को जाते हुए मे मिले पडित को प्रणाम न करना शास्त्र-विरुद्ध बात होगी। मन के ग्राक्रोश को थामकर, 'पैलाग, भट्टज्यू ! जरा चितई मदिर जा रही हूँ।' कहने के बाद, कौशिला आगे बढने लगी थी, कि भैरव भट्ट बोले—"आशीर्वाद, सौभाग्यवती—अष्टपुत्रवती भव। सुरेन्दर की माँ, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के 'इलक्शन' नजदीक आ गए है ग्रौर इलक्शन के समय एक-एक भोट की बहुत बडी कीमत होती है। तुम्हारा, तुम्हारे घरवालो का, सभी का नाम भोटर-लिस्ट मे चढा हुग्रा है, इसलिए तुम सभी लोगो की बहुत बडी कीमत है। डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की चेयरमैनी के लिए कई लोग खडे उठे हुए है, मगर भोट देने के काबिल सिर्फ एक ही आदमी है। और सबसे बडी खुशी की बात यह है, कि वह तुम्हारी ही जात-बिरादरी का है।"

"द, भट्टज्यू, मुझे क्या मतलव हो रहा है भोट-फोटो से ?" कहकर, कौशिला फिर ग्रागे वढना ही चाहती थी, कि चेयरमैन-पद के लिए उम्मीदवार ठाकुर कचनसिह के प्रचारक भैरव भट्ट ने फिर रोक दिया—

"जरा रुको तो सही, सुरेन्दर की माँ ! तुम्हारे मतलब की बात भी बताता हूँ। तुमको यह, शायद, मालूम नही है, कि अगर ठाकुर साहब इस 'इलक्शन' मे जीत गए, तो उनकी तरफ से जागेश्वर मदिर मे 'भागवत' कराया जाएगा। जागेश्वर के मदिर के अलावा और भी देवताओ के छोटे-छोटे मदिरो मे भी एक हजार दीपक प्रति मदिर जलाने का उन्होने सकल्प ले रखा है। और सिर्फ इसीलिए ठाकुर साहब ने अपने भोटो के लिए जो बक्से मँगवा रखे है, उन सबमे दीपक का चित्र बनवा रखा है। खास जागेश्वर के मृत्युजय दीपक का फोटो उतार करके मँगाया था उन्होने। इसके अलावा हर शनिवार को मदिरो की पूजा के लिए जाने वाली भक्तन औरतो के लिए मोटर यहाँ से जागेश्वर तक के लिए 'रिर्जव' कराने का भी उनका इरादा है। अब तुम्ही सोचो, कि अगर इस समय हमारे ठाकुर साहब डिस्ट्रक्ट-वोर्ड के चेयरमैन होते, तो तुमको चितई के मन्दिर तक, इस तरह से अपनी नादान बेटी को पीठ पर चढाए हुए, पैदल वहाँ तक जाना पडता ?"

कौशिला सहसा निश्चित नही कर पाई, कि वह भैरवभट्ट को उत्तर क्या दे। अलमोडा शहर मे साल-दर साल अनेको प्रकार के चुनाव होते ही रहते है और उनमे अनेको प्रकार के सन्दूक भी रखे हुए रहते है, इतना तो कौशिला को मालूम था, मगर 'भोट' देने के बाद की किसी भी प्रतिक्रिया से उसका परिचय नही था। कई बार वह भोट देने गई थी और उसके ससुर रतनसिह ने प्रत्येक बार 'भोट' डालने का सन्दूक भी समझा दिया था। और कुछ न सही, इतना तो कौशिला समझती ही थी, कि 'भोट' भी एक महत्त्व-पूर्ण चीज होती है। भैरव भट्ट की बातो से आज कौशिला को पता लगा, कि इस साल के 'भोट' दीपकवाले सन्दूक मे डाले जाएँगे। फिर दीपकवाले सदूको के मालिक देवताओ के मदिरो मे 'भागवत्' करेगे और हजारो-लाखो दीपक जलाएँगे। अहारे, चितई के गोल्ल-मन्दिर मे जब हजारो दीपक जलाए जाएँगे, कैसा जगमगा उठेगा गोल्ल देवता का दरबार ? कौशिला ने सोच लिया, कि इस साल का 'भोट' दीपकवाले सन्दूक मे ही डालेगी।

देवता और दीपक की सेवा कभी व्यर्थ नही जाती। पारबती लालन भी तो निरसन्तानी थी और जब जागेश्वर के मन्दिर मे रात-भर 'खडा दीपक' लेकर लौटी, तो अगले ही साल बेटा गोद मे आ गया। ऐसा तत्काल फलदायक होता है, देवता और दीपक की सेवा-चाकरी का चमत्कार।

भैरव भट्ट अभी तक घूर ही रहे थे कौशिला को। कौशिला 'हॉ, हाँ, मै तो परमेश्वर के दीपकवाले सन्दूक मे ही डालूँगी अपनी 'भोट'।' कहना ही चाहती थी, कि भैरव भट्ट ने कहा—"पलटन बाजार के बैरिस्टर ठाकुर कचनसिह तो अलमोडा शहर के नामी बैरिस्टर है और ईश्वर भक्त तथा कट्टर हिन्दू है। उनको 'भोट' देना हिन्दू धर्म को और धर्म-पुण्य की पावन-ज्योति को 'भोट' देना है।"

ठाकुर कचनसिह बैरिस्टर का नाम सुनना था, कि कौशिला की ऑखो मे रोष उतर आया—"दीपकवाले सारे सन्दूक तुम्हारे बैरिस्टर साहब के ही होगे क्या ?"

"हॉ, हॉ, सारे दीपकवाले सन्दूक!"—भैरव भट्ट ने उत्साह के साथ कहा।

"द,फिरउन सारेसदूकोमे बकौल फूल जाए और भॅगोला भभक जाए!' कहते हुए, रोष के साथ पॉव पटकती हुई, भैरव भट्ट की ओर आग्नेय-नेत्रो से घूरती आगे बढ गई कौशिला। उसकी स्मृति मे उभरता ही चला आया बैरिस्टर कचनसिह का ऊदबिलाव-जैसा चेहरा और पिछले महीने का उनका-दुतकारना। कहॉ तो वह दुखियारी यह जानने के लिए गई थी, कि खसम तो एकदम निर्मोही और अन्यायी हो गया है। वचन दे के भी, रुपये नही भेज रहा। सरकार के यहॉ से कुछ न्याय-निसाफ हो सकेगा ? कौशिला ने एक-दम विवशता की स्थिति आ जाने पर, अपने पति के विरुद्ध हर्जे-खर्चे का दावा ठोकने का निश्चय भी बतला दिया था। "मगर, द, तेरे लकडी के सदूको मे एक 'भोट' नही पडे, अन्यायी! कहॉ से दुखियारी को सही रास्ता बता कर, उसकी ऑखो के ऑसू सुखाता, उलटे पॉच रुपये की फीस डकार करके, उपदेश-जैसे देने लगा, कि 'ठाकुर रत्नसिह मेरे बहुत बडे दोस्त हैं

और बहुत रईस आदमी है। तुमको उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। बड़े घर की बहू-बेटी को इस तरह से कचहरी-मुकद्दमो के बवाले मे नही फँसना चाहिए।'

अरे, आग लग जाए तुम दोनो नग-ठगो के बड़े-बड़े, ऊँचे-ऊँचे घरों को। एक साथ शराब की बोतलो और हुडक्यानियो (मीरासिनो) के नाच-गानो का मजा लेने वाले ठहरे दोनो मुसटण्डे, सो एक-दूसरे का पक्ष तो लेगे ही। तेरे ऊँचे घर की किसी बहू-बेटी के सिर पर पड़ा होता सकट का इतना बड़ा परबत, तब तू जानता, कि दूसरो को उपदेश देना कैसा होता है।—कौशिला की आत्मा रोष से बौखला उठी और उसके मुँह से अपने ससुर और बैरिस्टर ठाकुर के लिए गालियाँ निकलती ही चली गई—एक ने मेरा घर-गृहस्थी का हक मारके रख दिया, एक ने जतन से बचाए हुए पाँच रुपये हजम कर लिए। अरे, होगी मुझ दुखियारी के कलेजे की चोट सच्ची, तो तेरी पाँच पीढियो की छातियाँ फोड के बाहर निकलेगे मेरे रुपये!

कौशिला को यह भी याद आया, कि सावित्री भोटियानी को घर में नाजायज तरीके से रखने के मामले मे जब दोनो बाप-बेटे फँसे थे, तो कौशिला को तो यही उम्मीद थी, कि इस बार दोनो को उसकी छाती पर धौसे बजवाने और सताने का दण्ड मिलेगा राज-दरबार से, क्योकि देव-दरबार तक अपनी फरियाद पहुँचाने के लिए तो वह निरन्तर मन-ही-मन विलाप करती रहती थी। मगर, लोग कहते है, कि बैरिस्टर ठाकुर ने उस साल ऐसी जोरदार बहस कचहरी मे कर दी और कलक्टर के आगे कानून की ऐसी-ऐसी जबर्दस्त किताबो का ढेर लगा दिया, कि कलक्टर एकदम घबरा गया और जल्दी-जल्दी उसने 'ऑर्डर' दिया, कि दोनो बाप-बेटो को बा-इज्जत बरी किया जाता है।

अरे, कौशिला की मति भी पथरा गई थी, जो ऐसे अपने दुश्मनो के पैरवीकार के पास अपने पाँच रुपये गँवाने और उपदेश सुनने चली गई। परमेश्वर करे, ऐसे अन्यायी बैरिस्टर के सदूको मे एक भोट भी नही पडे।

× × ×

दोराहे से ग्रागे पडनेवाली घाटी से, सितोला-वलढोटी का घना चीड-वन लग गया था। बलढोटी के चीड-वन की पक्ति तो दरवारी नगर से ही ग्रारम्भ हो जाती है, मगर सितोला-वन की सल्लि-पक्ति उसके समानातर चुगी-चौकी के पास से ही ग्रारम्भ होती है। उत्तरी-पार्श्व मे सितोला का चीड-वन है, दक्षिणी-पार्श्व मे बलढोटी का ग्रौर वीचो-बीच, घनी केश राशि वाली सुहागिनी की मध्यवर्त्ती सिदूर-रेखा-सी, ग्रलमोडा-पिठौरागढ की सडक चली गई है।

चुगी-चौकी के पास की बाल्मीकि-वस्ती के बाद से ही घर-सूना वन ग्रारम्भ हो जाता है ग्रौर फिर टिपुडी सेनिटोरियम के पास से ही इक्के-दुक्के घर दिखाई पडते है, सडक के किनारे। कौशिला को सूने वन के बीच की सडक पर चलते हुए, एकाएक उदासी ने घेर लिया। उसे लगा, उसकी मानसिक ग्रौर शारीरिक उत्तेजनाग्रो के बावजूद, एक कोई ऐसी ग्रातस्त-लिक-वर्जना भी ग्रवश्य है, जो बेर-बेर उसके घुटनो-टखनो तक उतर ग्राती है ग्रौर उसे एक थकान-सी ग्रनुभव होने लगती है। लगता है, हाथ मे थमी पूजा की थाली ग्रौर पीठ पर बॉहो की सॉकल गले मे डाले माँ के सताप ग्रौर ग्राक्रोश से सुन्न पडी-सी लिली की देह गरुग्रा गई है। कौशिला नही चाहती, मगर वर्जना का यह थका देने वाला, ग्रवसाद से घेर लेने वाला, स्वर कही वहुत गहराई से पानी मे पत्थर मारने के बाद उठनेवाले बबूलो की तरह ऊपर उठ ग्राता है—कौशिला, तुझ-जैसी सतानवती-सुहागवती नारी के लिए यो रॉड ग्रौरतो का जैसा भेष बनाकर घतियाने को दौडना ठीक नही।

भोटिया-धारा के पास पहुँचते-पहुँचते, उदासी से घिरी कौशिला ने एक बार उस घनी-बनैली घाटी के ऊपरी सिरान की ग्रोर देखा ग्रौर फिर दुवारा निचले पयान की ग्रोर बहती क्षीण जल-रेखा को। उसने सोचा, इतने विकट ग्रौर बियावान वन की गहरी-सॅकरी घाटियो मे से होती हुई यह एकदम पतली-छरहरी जल-रेखा कितने शात चित्त से वहती चली जा रही है! ग्रौर एक वह है, कि जरा-सा सकट पडा नही, कि बिलकुल रॉड ग्रौरतो

का जैसा हाहाकार मचाती घात-घतियाने दौड रही है।

कौशिला का मन हुआ, लौट जाए अब। पच्चीस रुपये कुर्ती की जेब मे पडे ही हुए है। यशोदा सासू ने और भी सहारा देते रहने का आश्वासन दिया है। कभी-कभार पारबती लालन भी आधार दे ही देती है। जैसे-तैसे दिन कट ही जाएँगे। भगवती माई कहती थी, कि सब्र का फल सब फलो से मीठा होता है। घात-घतियाने से कभी-कभी अपनी ही जड उखडने लगती है। हे राम! कही घात विपरीत फला गई तो? हे परमेश्वर गोल्ल देवता हो! मेरे सुरेन्दर-नरेन्दर को सुखी रखना। अब इस समय सास-ससुर और सौत के लिए हकार-फुकार-जैसी लेकर, हाहाकार मचाने आकर क्या करूँगी? तुम तो नारायण हो, कोई मन्दिर की ही मूरत मे थोडे बैठे रहते हो। मेरा दु ख-सुख और मेरा शोक-सताप सब तुम्हारी आँखो का देखा हुआ है। अब तो प्रार्थना यही है, कि सुखियारी राह दे देना मुझे। अच्छे दिन बेर लौटाना, मै सुख-सतोष की भेट-पूजा चढाने आऊँगी, तो तुम्हारे देव-दरबार की भी शोभा बढेगी। हजारों घटे तुम्हारे मदिर मे लटके हुए हैं। सुरेन्दर-नरेन्दर और लिली उछल-उछलकर उन्हे बजाएँगे, तो तुम्हारा दरबार कैसा गूँज उठेगा?

हे परमेश्वर गोल्ल देवता हो! मन की श्रद्धा की लाज रख लेना, स्वामी, भूल-चूक देखना, बिसर जाना। दोपहरी घिर आई है। ढाई-साढे तीन, छै मील की यात्रा करके लौटते-लौटते कही साँझ हो गई, तो फिर इस विकट वन की सूनी सडक पर लिली छोरी को लेके कैसे लौटूँगी? आज यह पूजा की थाली नीचे तुम्हारे गुरुभाई गगनाथ जी के मन्दिर मे समर्पित कर आती हूँ। गुरुभाई-गुरुभाई की एक ही बात है। सुखियारे दिनो की मनौती मनाने के लिए पत्र-पुष्प चढाने तुम्हारे दरबार मे भी जल्दी ही आऊँगी। रामपुर से धौशिला दीदी का मन्यौडर मेरा जबाबी पोस्टकार्ड पाते ही आ जाएगा। तब मान-भरम के साथ आऊँगी। अरे, होने को तो पच्चीस रुपये इस समय भी तुम्हारे ही दिए हुए है, हो परमेश्वर! मगर आजकल जैसे दाने-दाने को लाचार पडी हुई हूँ, तुमको भी खबर ही होगी ''

मन-ही-मन शीतल जल की रेखा-जैसी अपने सतप्त कलेजे की ओर बहाती हुई, कौशिला भोटियाधारा की ओर बढी, कि जरा हाथ-मुँह धोकर पानी पी ले अब तो। अगले ही मोड से नीचे गगनाथ जी का मन्दिर बना हुआ है। वहाँ दीप-बाती करने के बाद, फिर प्रसाद भी ग्रहण कर लेगी। शनिश्चर के दिन छाक छोडना अशगुन करता है।

हाथ-मुँह धोकर, फिर लिली को पीठ पर चढाए, कौशिला गगनाथ देवता के मन्दिर की ओर बढना ही चाहती थी, कि उसने देखा—सामने से, उससे भी ज्यादा विकराल वेश बनाए, रायल-फोटोग्राफर बृजेन्दरसिंह की घरवाली मोतिमा मस्तानी चली आ रही है!

और कौशिला वहीं पर ठिठकी रह गई।

मोतिमा मस्तानी

आठ

मोतिमा उस दिन सिलँगचौर वनखण्ड की ओर गई हुई थी।

अपने पडाव-स्थित घर को छोडते समय, उसने बहुत ही उत्सुकता और ललक के साथ अपने सौतिया पिता देवदत्त की दुकान के चबूतरे पर बैठे उस शहरी बाबू को देखा था, जो परसो दोपहर को ही यहाँ पहुँचा था। शहरी बाबू तब बहुत बडा चमत्कारी लगा था मोतिमा को। उसके पास तीन लकडी की टाँगो पर खडी रहनेवाली एक जादू की पिटारी थी, जिसे वह एकदम काले कपडे से ढँके रहता था।

मोतिमा ने देखा था उसे और सुना था, कि फोटू खीचने वाला आया हुआ है। फोटू खीचनेवाला, याने अपने जिस रूप-स्वरूप को देखने के लिए बहुत बडा आदमकद शीशा चाहिए, उसे एक छोटे-से कागज के टुकडे पर हुबहू उतार देने वाला! मोतिमा सोचती रही थी, कि उसके पास जो आईना है, उसमे उसकी देह भी पूरा नही समा पाती और सूरत-मूरत का प्रतिविम्ब भी सिर्फ तभी तक के लिए ऊभरा हुआ रहता है, जब तक वह उस आईने को हाथ मे लिए टुकुर-टुकुर ताकती रहती है उसे। यह आईना पिछले साल उसने खरीदा था, जब अलमोडा का शमशुद्दीन कलाल, चूडी-कघी-काजल-शीशे की चलती-फिरती दुकान लेकर, सेराघाट के शकर-मेले मे आया था। तीन खजानो वाली डिबिया उसने आठ आने मे खरीदी थी। एक खजाना काजल का, एक खजाना सिदूर का और सबसे ऊपर, डिबिया के ढक्कन पर ही, तीसरा खजाना दर्पण का। काजल-सिंदूर लगालो और फिर देखो अपना सलोना रूप आईने मे। तीन खजानो वाली डिबिया खरीदते हुए, मोतिमा ने बहुत ही कौतूहलपूर्वक शमशुद्दीन कलाल के दढियल चेहरे को देखा था। हे राम, कितना-कितना उस्ताद है यह कलाल, तभी तो इतनी खच्चर की पूँछ-जैसी दाढी भी भूल रही है!

और कल शमशुद्दीन कलाल से भी अधिक उस्ताद लगा था वह शहरी

बाबू, जो काली-कलूटी सदूकची मे से फोटू खिचानेवाले लोगो की गोरी-गोरी आकृतियाँ उतार रहा था। पडाव के निवासियो के अलावा, आॅव-गाॅव से आए हुए कई लोगो ने भी अपनी तस्वीरे खिचवाई थी और शहरी बाबू ने सबको यही आश्वासन दिया था, कि शहर वापस लौटती बेला वह उन सभी की तस्वीरे साफ करके दे जायेगा, जिनकी उसी दिन 'डेवलप' नही हो सकी थी।

मोतिमा के सौतिया पिता ने भी उसकी सगी माँ के साथ, उससे पैदा हुए दोनो बेटो को गोद मे लेकर, एक फोटो खिचाई थी। मोतिमा ने पहले उस फोटो का 'निगेटिव' ही देखा था और उसे बहुत खुशी हुई थी, कि वह अपने माॅ-बाप के साथ तस्वीर नही खिचवा सकी थी। ऐसी ही भद्दी-काली सूरत उसकी भी उतरती, तो उसे कितना क्लेश होता, मगर कल जब शहरी बाबू ने साफ करके फोटो दी थी, तो मोतिमा देखती रह गई थी और उसकी आॅखो मे अपना फोटो खिचवाने की अदम्य तृष्णा उभर आई थी। किंतु, आग्रह करने पर भी, उसके बाप ने उसकी फोटो खिचवाने के लिए पैसे खर्च करना स्वीकार नही किया था। बल्कि उलटे उसे ही डाॅट दिया था—"ले, यह मेरी चोट्टी अब अपना फोटो उतरवाएगी! अरी, कमजात, जरा पहले अपनी शक्ल तो देखकर आ आईने मे। जनमते ही बाप और ब्याहते ही खसम को खा गई राॅड, अब क्रिस्तानियो के जैसे मिजाज-नखरे सूझ रहे है।"

मोतिमा ने कुछ जिद की थी, कि मै अपने पैसो से खिचवा लूँगी, तो देवदत्त ने एक लात मारी थी कसकर—"अरे, वह फोटोग्राफर क्या खीचेगा? उससे अच्छी तरह से तो तेरी खाल मैं खुद ही खीच दूँगा। क्यो, बदजात, कहाॅ से कमा कर लाई है रुपये? सिपाहियो से कमाये होगे?"

और मोतिमा आॅसू बिखेरती घुडसाल की लीद साफ करने चली गई थी, मगर लीद बटोरते-बटोरते उसे ऐसा लगा था, जैसे अपनी जिदगी के टुकडों को एक ठौर एकत्र कर रही हो।

× × ×

अलमोडा से बाडेछीना-नैनी, सेराघाट-गगोलीहाट और बॉसपटाण-चनडॉक होती हुई जो सडक पिथौरागढ तहसील (अब जिला) तक गई है, उसी पर अनेक इतर घोडिया-पडावो की तरह पौधार भी एक पडाव है। उन दिनो अलमोडा से पिथौरागढ के लिए मोटर-मार्ग नही बना था, सो गंगोलीहाट होती हुई जानेवाली इस सडक पर के पडावो पर चहल-पहल रहती थी। दुकानदारो के सारे सामान उन दिनो खच्चर और लद्दू घोडो की पीठ पर ही आते-जाते थे। इसके अलावा, यात्रियो के सवारी के घोडे भी चलते ही रहते थे, सो पडावो पर घास-दाने की अच्छी खासी बिक्री हो जाती थी।

प्रथम महायुद्ध का दौर था। कुमायूँ के भी हजारो लोग ब्रिटिश सेना मे थे और उस समय उन्हे कई-एक ऐसी सुविधाएँ प्राप्त थी, जो आज के सैनिको को नही मिल सकती। सो उस समय के सैनिक मुट्ठी खोलकर खर्च करते थे। शहरी सभ्यता तब तक कुमायूँ के अतरग प्रदेशो मे पहुँची नही थी, पूरी तरह। धीरे-धीरे इन सैनिको के माध्यम से ही बहुत-सी शहरी-बिलायती वस्तुओ और रुचियो का प्रसार-प्रचार हो रहा था। गगोलीहाट, बेलपट्टी और सोर-अस्कोट पट्टियो के लोग अपेक्षतया सख्या मे बहुत थे फौजी नौकरियो मे, सो इस ओर और अधिक तीव्रता से आधुनिक सभ्यता का दौर भी आरम्भ हुआ, जो नगर-निकट के प्रदेशो मे तो बहुत पुराना पड चुका था।

पौधार पडाव गगोलीहाट-सेराघाट की सात मील लम्बी उतार-चढाई वाली पहाडी के बीचोबीच होने से, यहॉ भी खच्चर, घोडे और मुसाफिरो का रैन-बसेरा रहता था और गिनती की जो चार-पॉच दुकाने तब थी, उनके मालिको को यथेष्ठ आमदनी हो जाया करती थी।

रुपये-पैसे के साथ-साथ शाश्वत रूप से चलने वाली कई अनैतिक प्रवृत्तियॉ भी फौजी जवानो के कदमो से कदम मिलाकर चला करती थी, सो उन दिनो चहल-पहल और आमदनी वाले पडावो पर मिरासी-मिरासिनो के कुनबे भी बस गए थे। मिरासी सारगी-तबलो की गूँज-थाप से और

मिरासिनें घुँघरुओं की झंकार के साथ उठने वाले पहाड़ी गीतों और देशी गजलों के बोलों से हौलदार-सूबेदार लोगों का मन बहलाती थी। इन मिरासिनों की यह रोजी-रोटी सिर्फ गाने-नाचने तक ही सीमित नहीं थी। प्रच्छन्न वेश्यावृत्ति भी इनकी जीविका का एक मूल्यवान माध्यम था और ऐसा मिरासिनें मिरासियों की जानकारी में ही करती थीं, चोरी-चोरी नहीं। देवदत्त की दुकान भी अच्छी-खासी चल रही थी। दुकान में सौदा-पत्ता और चाय-पानी की बिक्री होती थी, तो टीन-छाए घुड़साल में घास-चना खप जाता था।

मोतिमा की एक बहुत बड़ी उपयोगिता इसीलिए बनी हुई थी, कि उसके हाथों में मेहनत की लकीरें थीं। दराती की धार तो लगभग सभी की एक-जैसी होती है, मगर हाथों के सलीके में अंतर होता है। मोतिमा के भी दो ही हाथ थे, मगर ऐसे मशीन के पुर्जों-जैसे चलते थे, कि साँथ-संगत की औरतों की प्रशंसा-भरी दीठ उसके घास काटते हाथों पर पड़ते ही, कुछ क्षण वहीं थिरा जाती थी—"मोतिया के हाथ में तो घास की मूठ आती भी नहीं दिखाई देती।"

और घास की छोटी-छोटी पुलियाँ भी एक-एक आने को बिक जाती थीं। सो मोतिमा, कपालफूटी और अलच्छिनी होते हुए भी, देवदत्त के परिवार में पल-पनप रही थी। जहाँ उसे सौतेले पिता की घृणा-भरी फटकारें सुननी पड़ती थीं, सगी माँ की विषैली विरक्ति झेलनी पड़ती थी और कुण्ठा-पीडाओं की लीद बटोरती-सी उसकी कठिन काटनी जिन्दगी के दिन बीत जाते थे, रातें व्यतीत हो जाती थीं।

उसने सुना था, कि जिस दिन वह जन्मी थी, उसी दिन लाम से उसके पिता चन्द्रदत्त के फौत हो जाने का तार भी आ पहुँचा था। रिश्तेदारों के नाम पर स्वैरों-बिरादरों की बहुत बड़ी जमात थी, मगर बाप टोकनेवाली मोतिमा के लिए ममता सिर्फ एक उसकी दादी के ही मन में उपज सकी थी। दादी के ही हाथ के गास-टुकड़े खाकर, मोतिमा सात-आठ बरस की हुई थी, कि उसके चचा देवदत्त ने पौधार पड़ाव में दुकान खोली और

उसकी माँ उतमा को भी वही ले गया। अपनी घरवाली को घर पर ही खेती-वाडी का काम सँभालने को छोड गया। मोतिमा भी घर पर ही रह गई थी और अपनी चाची के साथ खेत-वन के काम करती थी।

तभी एक दिन देवदत्त और उतमा गाँव लौटे। मोतिमा को भी साथ ले गए। पडाव की दुकान से ही, देवदत्त ने एक दिन मोतिमा को सिर पर मुकुट लगाकर बिदा कर दिया। पाँच सौ की थैली देकर, जागेश्वर का रुद्रदत्त पण्डा मोतिमा को ब्याह ले गया था, मगर उसको भी जागेश्वर तीर्थ के रुद्र ऐसे बाँए सिद्ध हुए, कि इस चौथी शादी को उसने चार महीने भी नही भुगता। और, मोतिमा एक दिन विलाप करती लौट आई। और, देवदत्त ने उसे अपने घर मे ठौर दे दी, तो यही सोचकर, कि पहली घर-वाली गाँव मे ही रहती है। दूसरी उतमा भौजी से अब सतान होने की आशा है और, पडाव की दुकान के अलावा, एक घुडसाल खोल लिया है। घास काटने, लीद बटोरने के काम आ जाएगी। · और घास काटते, लीद बटोरते ही पाँच बरस कट गए थे।

मोतिमा की देह अब खिल चुकी थी। तीन खजानो वाली डिबिया के ढक्कन-शीशे मे समा नही पा रही थी। मोतिमा अब तरुणा गई थी। मोतिमा की आँखो मे अब कामना और तृष्णा का उद्दाम जल छलछलाने लग गया था। मोतिमा की आँखो मे अनेको सपने तैरने लग गए थे। ·

मोतिमा साथ-सगत की औरतो से सुना करती थी, कि पलटन के कई सिपाही देश-परदेश को वापस लौटते समय उस जवान औरत को अपने साथ भगा ले जाते है, जिससे पहाड के दु ख नही झेले जाते, याने जिसके पास ऐसा कोई साधन-सम्बल नही होता, जिसके सहारे कपालफूटी जिन्दगी का पहाड काटा जा सके।

मोतिमा ऐसी ही कपालफूटी थी, जिसे कमरतोड काम करने के बदले मे सिर्फ रोटियो का सहारा मिलता था। प्यार-दुलार के नाम पर प्रताड-नाओ-लाछनाओ के अलावा और कुछ नही। 'और सिर्फ रोटियो के सहारे सारी उमर काटनी कठिन होती है।···सिर्फ रोटियो के सहारे छोटे आईने

मे नही समा पाने वाली देह सुख नही पा सकती । और सिर्फ रोटियो के सहारे आँखो की पुतलियो को ढँककर, उनके आर-पार सपनो को तिरा देने वाली उद्दाम कामना-तृष्णा के ज्वार वश मे नही रखे जा सकते !...और इसीलिए आजकल मोतिमा की आँखो मे एक सपना यह भी तैरा करता था, कि कभी कोई हौलदार या सिपाही उसे भी भगा ले जाए अपने साथ ।

मगर कल रात तो मोतिमा ने एकदम छोटा-सा सपना देखा था—काश, कोई फोटूवाला उसकी पूरी देह की छाया उतारकर, उसे उसी की तस्वीर का टुकडा दे जाता !

मगर देवदत्त ने लात मारकर, घुडसाल की लीद साफ करने भेज दिया था कल—और आज सवेरे-सवेरे ही, अपने डोटियाल कुली को लेकर, शहरी बाबू चला गया था । वह शहरी बाबू, जो मोतिमा की शीशे मे समाती देह की एक पूरी तस्वीर उसे दे सकता था, पिथौरागढ की यात्रा पर चला गया था । और, रात-भर एक छोटा-सा सपना देखने के बाद, सवेरे-सवेरे ही, मोतिमा भी घास काटने जगल की ओर निकल गई थी ।

नौ

पौधार से ऊपर की ओर जो पहाडी गई है, धारापानी-गगोलीहाट की ओर, पिथौरागढ को जानेवाली चौडी घोडिया-सडक उसी पर होती गई है और वह पगडण्डी भी, जिसके सिरान पर सिलँगचौर वनखण्ड की एकदम हरी-भरी और गहरी घाटी है। सिलॅगचौंर पर ही पगडण्डी और चौडी सडक का मेल भी होता है। पगडण्डी और चौडी सडक के दोराहे पर एक शीतल जल की पत्थर-धारा है, जहॉ यात्री अपनी थकान उतारते है। यहॉ चूँकि कुछ ही देर के विश्राम की आवश्यकता पडती है यात्रियो को, सो यहॉ कोई बड़ा पडाव नही है। तब तो सिर्फ एक दुकान थी, चाय-सिगरेट की।

सिलँगचौर का यह दोबटिया उन क्षणो मे बहुत मुखर हो उठता था, जब घाटी के पयान-सिरान की पहाडियो पर घास काटती औरते अपने रसीले, मोहिल और बिछोह-भरे कण्ठ से लोकगीतो के छद बिखेरने लगती थी। हाथो-थमी दरातियो की मूठ पर लँगे लोहे के घुँघुर-छल्ले छण्-छणा उठते थे और उनकी सगति मे पहाडिनो के कण्ठ के छद गूँज उठते थे। देश-परदेश की नौकरी-चाकरी मे गए स्वामियो और प्रियतमो की, कलेजे के कोनो को कॉटे निकालनेवाली छोटी-सी चिमटियो की तरह दाब लेनेवाली, उसॉसिल स्मृतियो के छन्द, कि—निर्मोही रे, जब तू जा रहा था, इस सिलॅगचौर की घाटी मे घास नही अँकुराई थी, बॉज-फल्यॉट के वृक्षो मे पाल्यो नही फूटी थी। बैरी रे, जिस बेला तू ऑखो को तॉबे के फौलो-जैसे भर करके, दीठ की ओर पीठ फिरा के जा रहा था, इस सिलँगचौर वनखण्ड के वृक्षो मे पछियो के घोसले भी नही लग पाए थे। मैं घास की पुलियॉ गाय-बाछी के लिए बॉधती थी, घर को लौटती थी और पछी घास के तिनके बटोरते थे, वृक्षो की ओर लौटते थे। ··सुवारे, जब तेरे पाँवो (हे राम, कभी कॉटो का मुख न देखना पड तेरे पॉवो की ताना-बाना-जैसा बुनता चलनेवाली जोडी को!) की अँगुलियो के मछली के पपोटो-जैसे, चॉदी की

•अठन्नी-चवन्नियो-जैसे नखो को परदेश की, पश्चिम दिशा की धूल ढाँप रही थी, उस वेला तो गोठ की गैया गाभन भी नही हुई थी, रे ! ·· और अब ? ·· तू तो लौटा नही रे कसाई, मगर तेरी आँखो की दीठ कही यहाँ पहुँचती, तो देखती, रे सुवरन ! ···कि, सिलॅगचौर घाटी की हरी-कौली घास घुटनो तक उठ आई है और वृक्षो की पाल्यो की मुलायम गुच्छियाँ मेरे सिर की बिखरी हुई लटी की तरह झूलने लग गई है।·· ···मेरे सुकण्ठ, पछियो के घोसले बने थे, उनमे अण्डकोषा-मादिनो की कोखे फली थी और आज चारे के लिए चोच खोलते पछियो के छोटे-छोटे छौनो को चहकते सुन रही हूँ, तो मेरी छातियो मे दूध पॅगुरा गया है—बेशरम, एक छौना तेरी सूरत-मूरत का मेरी गोद मे आ चुका, रे ! वन आई हूँ, तो घर छूट गया है छौना ! याद आती है उसकी, तो तेरी सूरत को भी हिया तरसने लगता है !—गोठ की गैया ब्याई थी, वह भी मेरी ही तरह अपनी बाछी छोड के वन चरने आई है, सुवरन ! ···तुझे कौली घास-पाल्यो, पछी-छौनो और गाय-बाछी की सौ-शपथ, रे निर्मोही, लौट आ ! लौट आ मेरे सुवरन, लौट आ ! ···

विरहिनो की उसाँसिल-स्मृतियो के छद सिलॅगचौर घाटी मे उदासी की घटाएँ घुमडा देते थे, तो कुछ ऐसी प्रसन्नवदना उन्मदाएँ भी होती थी, जिनके शृगारिक-गीतो को सुनके राह चलते यात्री का हिया हुलसने लगता था और पुरुष पछी अपनी मादिनो के उदर-लोमो को अपनी चोचो से सुगबुगाने लगते थे और कुँवारियो के कपोलो मे सिदूर उतर आता था।

पहाडी सडको के मोड काटने कठिन होते है, सो यात्री जनो के कण्ठ भी अकुला उठते और वे भी उन्मुक्त कण्ठ से आलाप भरते हुए, घसियारिनो को सम्बोधित करते हुए, परदेश के एकाकी-जीवन का रोना रोने लगते थे और उनमे से किसी ऐसी को साथ चलने का न्यौता देते थे, जिसकी दीठ-पीठ को बाँधनेवाला कोई न हो। याने न दीठ बाँधनेवाला पति हो और न पीठ बाँधनेवाला बालक।

मोतिमा की दीठ-पीठ बाँधनेवाला भी कोई नही था।

कमर-पतली पगडण्डी पॉव-पीछे छूटती जा रही थी और मोतिमा, अपनी साथ-सगत की घसियारिनो के साथ-साथ, सिलॅगचौर वनखण्ड की ओर बढती चली जा रही थी। सिलॅगचौर घाटी की पहाडियो-ढलानो पर हरी घास घनी होती है। बिना दीठ-पीठ बॅधी औरत की आँखो मे वेदना घनी होती है। सिलॅगचौर के पाल्यो-झूमते वृक्षो पर वनपछियो के तिन-किया घोसले पडे रहते है। सिन्दूर-रीते कपाल-तले की अभागिनी आँखो मे किसी यान्त्रिक-प्रियतम के साथ देश-परदेश भागने के सपने सुगबुगाते रहते है।

मोतिमा की आँखो मे एक सपना आया था, कि काश, वह फोटोग्राफर बाबू लोगो की तस्वीरे खीचने की जगह मोतिमा को ही खीच ले जाता! उसकी काली सन्दूकची के शीशे मे तो मोतिमा की सारी देह समा जाती।·· मगर आँखो का सपना आँखो मे ही रह गया था। · और गहराइयो मे डूबी-अटकी तृष्णा तरुणा गई थी।

"मोतिमा ननदी, आज पॉवो की जोडी धरती पर सुख नही पा रही है, लली! बडी बीच मेले मे खोई-खोई-जैसी चल रही हो, हसी! पगडण्डी छोडके, चौडी सडक पकडने का इरादा तो नही है?"—साथ चलती किसी भौजी ने ठिठोली की।

हे राम! क्या सचमुच पॉवो की जोडी अटपटाई हुई है?

"सुख तो आँखो की जोडी को नही मिल रहा, भौजी!"

"तरुणाई की तपन से दाह हो रहा होगा, लली!"

"सो तो होगा ही, भौजी! तुम्हारी आँखो का दाह तो बेर-बेर वन-सुॅवरी की तरह ब्याते-ब्याते रीत गया। पूस-माघ आनेवाले ही है, भौजी, ठण्डी आँखो से लम्बी-लम्बी रातो मे दुख ही पाओगी तुम।"

"अरे, हसी, तुमने नही भोगा अभी वेर-बेर ब्याने का सुख। तुम क्या जानो, लली, कि अनब्याए मे प्रियतम को और ब्या जाने पर उसकी निशानी को छाती से लगाकर सोने मे कितना सुख मिलता है?"

हे राम! गोपी भौजी को ज्ञा। वहुत है। बोलती ऐसे है बैरन, कि मुॅह

पर गोल हथेली-जैसी रख देती है। अरे, गोपी भौजी नही बोलती, उसका सुख-सन्तोष और सुहाग बोलता है। पति-पूत और परिवार की लाडली है, सो हर बेला तिगुना-तिगुना कर बोलती है। द, ऐसी अभागिनी औरत का जनम भी किसी काम का नही, जिसका न दीठ बॉधनेवाला स्वामी, न पीठ बॉधनेवाली सतान और न मुख-ठोडी छूकर दु ख घटानेवाला परिवार!

"मै तो कपालफूटी हूँ, भौजी!"

"दुत, बावली! कपाल फूट जाए तेरे दुश्मनो का। अरी, कपाल तो जागेश्वर के उस पण्डे का फूटा, तुम्हारा कपाल तो अभी भी सिदूर-टीका लगाने लायक चौडा है, लली! यो बिना ऋतु के ही बरसा नही करते, हसी! कभी तुम्हारी आँखो की जोडी भी सुख पाएगी। यह मधुली तो तीसरे घर का सुख भोग रही है।"—गोपी भौजी ने, मोतिमा का मुँह मुरझाते देख, मधुली की पीठ पर हथेली बजा दी—"क्यो, वे मधुली? तीन जात के सुख तूने भोगे है, सबसे भला सुख कौन-सा लगा?"

द, मधुली भौजी की जीभ भी रामगगा की कलौच मछली-जैसी पानी से ऊपर उछलती रहती है—"रोटी-कपडे और सतान का सुख यही आकर मिला है, दिदी, तो एक ठौर थिरा गई हूँ। देह का सुख तो पहले-दूसरे के साथ ही रीत गया था।"

ननद-भौजियो की ठिठोलियो मे ही, उस दिन भी, पौधार से सिलँग-चौर तक की लम्बी पगडण्डी पॉव-पीछे छूट गई थी और, सिलँगचौर के दोराहे से आगे बढकर, घाटी मे उतरने से पहले मोतिमा की आँखो की जोडी को सुख मिल गया—फोटोग्राफर बाबू सिलॅगचौर की दुकान की सडक से मिली दिवार पर बैठा चाय पी रहा था। हे राम! ये शहरवाले कितनी धीमी चाल चलते है? चौडी सडक पर भी इनकी देह थक जाती है। इनके घरो मे औरतो को बडा सुख मिलता होगा।

चार बरस अपने लैसनायक खसम के साथ देश-परदेश घूमकर लौटी कोकिला भौजी कहा करती थी, कि देश-परदेश मे औरतो के हाथ-पॉवो को बड़ा सुख मिलता है। पहाड मे तो बन-घाटियो के कॉटो-ककरो से ही मुक्ति

नही मिलती, देश-परदेश मे क्रीम-वैसलीन ग्रार पाउडर की शीशियो के ढक्कन खोलते-खोलते ही अँगुलियो की छाल चुपडी हो जाती है।

मोतिमा अपनी साथिनो के साथ आगे बढ ही रही थी, कि फोटोग्राफर बाबू ने अपना कैमरा सँभाल लिया और बोला—"पधानियो, जरा हँसते-गाते हुए आगे को बढो। मैं तुम्हारी तस्वीर एकदम फोकट मे खीचता हूँ।"

एकदम फोकट मे इतनी औरतो की फोटू!

हे, राम! शहरी बाबू बडे दिलदार और खर्चनसीन होते है। काश, कि मोतिमा सबसे आगे आ गई होती, एकदम अकेली। तब क्या फोटोग्राफर बाबू सिर्फ उसकी तस्वीर ही खीचता?...इतना उस्ताद आदमी है, तो क्या वह नही भॉप सकता, कि मोतिमा दीठ-पीठ की रीती ही है! सुना है, शहरो के तो कलाल-दलाल भी पहाड की विधवा औरतो को भगा ले जाते है!

अब तक तो सभी हँसती-खिलखिलाती और गीतो-ठिठोलियो के छद बिखेरती चली आ रही थी, मगर फोटोग्राफर बाबू के एकाएक आग्रह करने से सभी को ऐसा लगा, जैसे उन्हे गीत गाए, हँसे-मुस्कुराए और खिलखिलाए बरसो बीत चुके हो। मोतिमा ने गोपी-मधुली भौजियो की ओर आशा-भरी आँखो से देखा, कि शायद, ये दोनो चटुलियाँ ही खिलखिला उठे, मगर उसे बडा दु.ख हुआ, जब उसने देखा, कि उन दोनो के होठ भी अपनी ही ठौर थिरा गए थे। मोतिमा को डर लग रहा था, कि कही ऐसा न हो कि ये औरते ऐसे ही चुपचाप खडी रहे और फोटोग्राफर बाबू नाराज होकर, बिना तस्वीर खीचे ही, अपनी राह लग जाए। द, ऐसे एन मौके पर लाज-शरम भली नही होती।—मोतिमा ने एकाएक अपने मन की झिझक को उतारते हुए, गोपी भौजी को पहाडी मे कचोटा—"गोपी भौजी, फोटूग्राफर बाबू तस्वीर खीचने ही वाले है। तुम्हारी और मधुली भौजी की छातियो के बटन उघडे हुए है! तस्वीर खिचेगी, तो लोगो को मुख कैसे दिखाओगी, बेशरमो? यह फोटूग्राफर बाबू तो तुम्हारी उघडी छातियो को देश-परदेश के बारह मुल्को

तक घुमा देगा !"

गोपी-मधुली ने एकदम अटपटाकर, अपनी कुर्तियो की ओर देखा, मगर बटन लगे ही हुए थे। साथ की सारी औरते गोपी-मधुली पर खिल-खिला उठी और मोतिमा भी। गोपी भौजी ने एक बार अपनी चटुल दीठ चारो ओर फिराई और फिर बोल उठी—"ननदी, हमारी छातियो मे अब सिर्फ दूध ही दूध भरा रह गया है और दूध देखके कोई नही भरमाता, लली, दूध को बदनाम कोई नही करता। मगर, हसी, तुम अपनी अनफूटी छातियो का जरा जतन करना। कही ऐसा न हो, कि फोटूग्राफर बाबू तस्वीर के साथ-साथ उन्हे भी उतार ले जाए!"

और लाज-शरम के मारे मोतिमा की खिलखिलाहट होठो पर ही अटक गई थी, जैसे आँच पर से हटाते ही दूध का उफान अपनी ठौर थिमा जाता है। हे राम, उस दिन मोतिमा को कहाँ खबर थी, कि वह फोटोग्राफर बाबू सचमुच ही उसे उतार ले जाएगा! उसकी पूरी देह—छोटे-से शीशे मे न समा पाने वाली देह—उतार ले जाएगा।

दिगौ, घास काटते-काटते रुककर, कभी एक ठौर छाया मे बैठती थी, गोपी-मधुली भौजियो के साथ, तो चटुली बैरने प्यार से उसकी छातियाँ चूमने लगती थी—"ननदी, बडी मीठी है तुम्हारी छातियाँ। अभी तो शहद-जैसा भरा हुआ है, बाद मे कभी दूध उतर आएगा। और, हसी, औरतो की छातियाँ तभी पवित्र हो पाती है, जब उनमे दूध पनपता है। बुरा न मानना, लली, मगर दिन-पर दिन तुम्हारी देह से रूप की पाल्यो-जैसी फूट रही है, कैसे काटोगी अपने दिन ?"

और मोतिमा की आँखो के आँसू, गहरे पातो पर अटक कर डठल की ओर उतर जाने वाली जल की बूँदो की तरह, छातियो तक उतर आते थे और देह डठला उठती थी और वह गोपी भौजी के आँचल मे अपना मुँह छिपा लेती थी। ...

× × ×

फोटो खीचने के बाद, फोटोग्राफर बाबू ने दुकान से पाव-भर मिसरी

खरीदी थी और, 'शाबाश, पधानियो, शाबाश !' कहते हुए, एक-एक कुजा सभी को बाँटा था। मोतिमा की हथेली सबसे बाद मे आगे बढी थी, सो उसकी हथेली मे बाकी के तीन कुजे आ गए थे।

गोपी भौजी बोल उठी थी—"फोटूग्राफर भी माल देख करके मिसरी बाँट रहा है। मोतिमा ननदी को तो पहले ही छाती के बटनो की सुधि आ गई थी।"

मिसरी के कुजे गोपी भौजी के आँचल मे डालकर, मोतिमा सडक से नीचे उतर गई थी। मगर अपनी हथेली उसे ऐसी कसमसाती लग रही थी, जैसे मिसरी के कुजे हथेली मे ही फूट गए हो और उनमे चीटियाँ लग गई हो।

दस

थू-थू-थू···

"थू तेरी मरद जात के मुँह पर !"—तीन बार बिरा-बिराकर, और पपडियाए होठो को आपस मे टकरा-टकराकर, थूकने के बाद, चौथी बार मोतिमा मस्तानी चीख उठी। और फिर, अपनी अधसुलगे कोयलो-जैसी आँखें उघाडकर, बडी देर तक, बृजेन्दरसिह रॉयल-फोटोग्राफर की अपनी ही फोटो पर चेचक के बिथुराए फफोलो-जैसे अपने थूक को देखती रही।

आज अठारह वर्षो के बाद मोतिमा ने अपने अतीत के उन क्षणो को याद किया था, जो पौधार की घुडसाल के टीन-छाए छप्पर और सिलॅगचौर दोराहे की दुकान के बीच बीते थे। उस दिन मोतिमा को कहाँ खबर थी, कि उसका वह छोटा-सा सपना सच हो जाएगा और अपने पिथौरागढ के 'फोटो-ग्राफिक-टूर' से अलमोडा शहर की ओर वापस लौटते हुए, रॉयल-फोटो-ग्राफर बृजेन्दरसिह उसे अपने साथ ले जाएगा ?

हे राम ! कैसे चाशनी मे डूबती इमरतियो-जैसे क्षण थे वो, जिनमे हथेली मे मिसरी के कुजो के आने से लेकर के, घुडसाल के छप्पर मे रॉयल-फोटोग्राफर के हाथो से मोतिमा को अपनी ओर खीचने तक की कथा अकित हुई थी।

रॉयल-फोटोग्राफर पिथौरागढ की यात्रा से लौट करके, फिर पौधार पडाव मे ही टिका हुआ था—देवदत्त के यहाँ। इस बार उसने एक टट्टू किराये पर ले रखा था और उसी टट्टू को घास डालने मोतिमा घुडसाल गई थी। उसे क्या पता था, कि रॉयल-फोटोग्राफर बाबू वही खडे होगे। अँधेरा घिरा हुआ था, तो एक छिलुक जला ले गई थी, मगर वह बुझ गया था। फोटोग्राफर बाबू ने अपने 'हॉगकॉग टॉर्च' की रोशनी दिखाते हुए कहा था—"आओ, पधानी, आओ ! अरे, तुम तो वही पधानी हो, जो उस दिन ऊपर सिलँगचौरे की दुकान के पास, अपने साथ की दूसरी पधानियो के साथ खडी

थी और मैने तुम्हारी फोटो खीची थी। दिखाऊँ ?"

मोतिमा ने अटपटाकर, इधर-उधर देखा था और फोटोग्राफर बाबू ने उसकी स्वीकृति को भाँपते हुए, टॉर्च की रोशनी मे वह तस्वीर दिखाई थी उसे, जिसमे उसकी पूरी देह तो समाई ही हुई थी, साथ ही गोपी-मधुली भौजियो के छेडे हुए शहद के छत्ते भी उभर आए थे और मोतिमा शरमा गई थी, कि—हे राम, फोटोग्राफर बाबू तो बडे बेशरम, बडे जादूगर आदमी है !

अरे, उस दिन कहाँ जानती थी मोतिमा, कि जिसे बेशरम समझते हुए उसकी आँखो की जोडी सुख के भार से झुक गई थी, एक दिन उसी को 'बेश-रम-बदजात और बदमाश' कहते हुए होठो पर से थूक के लच्छे नीचे को झूल जाएँगे।

आज जो फोटोग्राफर बाबू उसे धरमशाले की कालकोठरी मे तडपने को छोड गया था और उसके बेटे हरेन्दर को अपने साथ उठा ले गया था, उसी रॉयल फोटोग्राफर ने उस दिन, उसको अपनी ओर खीचकर, टॉर्च बुझा लिया था और अँधेरे मे ही उसकी देह का दु ख भाँपते हुए बोला था—"पधानी, तू तो विधवा-जैसी दिखाई देती है ? मैं तो तुझे उसी दिन मिसरी देते हुए ही समझ गया था, कि तू रॉड होकर के मायके मे पडी हुई है।"

··और मोतिमा को लगा था, कि फोटोग्राफर बाबू त्रिकालदर्शी है और बडे जतन से छिपाकर रखी गई दु ख की ताम्र-कलशी फूट पडी थी।··· और फोटोग्राफर बाबू ने, बिना अपनी जादू-भरी काली सदूकची का सहारा लिए ही, उसकी पूरी देह को अपनी ओर खीच लिया था।·· और, दूसरे दिन की पूरब दिशा उघडते ही, मोतिमा फोटोग्राफर बाबू के साथ भाग गई थी। फोटोग्राफर बाबू जानते थे, कि सीधी सडक से चलने पर कही-न-कही पकड लिए जाएँगे, अगर मोतिमा के बाप देवदत्त ने पीछा किया। सो सेराघाट पहुँचते ही उसने रास्ता बदल लिया था और अलमोडा-बेणीनाग वाली सडक फिराकर ले आया था।

× × ×

सिर्फ किसी देशी-परदेशी के साथ शहर तक भागने का ही सपना

मोतिमा ने देखा था और वह पूरा हो गया था। किसी के साथ भागकर, शहर तक पहुँच जाने के बाद के सपने का कोई पूरा खाका तैयार करने की तब सामर्थ्य ही कहाँ थी उसकी आँखो मे ? उसके सुख-सतोष के लिए तो यह कल्पना ही बहुत थी, कि शहर पहुँच जाएगी, तो उसके पाँवो की जोडी मोटर की सडक पर चलने का सुख पाएगी और आँखो की जोडी बडे-बडे आलीशान बँगले, शहर की रौनक तथा सिनेमा देखने का सुख पाएगी। इन सबसे भी गात गदराने वाली कल्पना यह थी, कि शहर जाकर मोतिमा फिर सुहागिन हो जाएगी और उसकी दीठ-पीठ बँध जाएगी।

...और दीठ-पीठ आज तक ऐसी बँधी रही, कि जैसे कोई बकरी बूचड के खूँटे से बँधी रहती है। और आज मोतिमा की दीठ-पीठ दोनो खुली है, तो ऐसे, कि जैसे कोई बूढी गाय को घर के खूँटे से खोलकर, जगल मे छोड आया हो।

रॉयल-फोटोग्राफर बृजेन्दरसिह उर्फ बिजुवा मस्ताना ने एक दिन उसकी दीठ बाँधी थी। अलमोडा पहुँचते ही, उसने मोतिमा को अपने पलटन बाजार वाले डेरे मे रखा था और ह्विस्की-मास्टर भीमचन्द की शराब-भट्टी की सारी बदबू उसकी गोरी-छरहरी देह के आस-पास ऐसे सिमट आई थी, जैसे मिसरी के कुजो के आस-पास काली चीटियो की कतारे आ सिमटती है। मोतिमा क्या जानती थी, कि रॉयल फोटोग्राफर मस्ताना ने अपनी तस्वीर खीचनेवाली सदूकची से भी ज्यादा काला और खतरनाक दिल अपनी तीन पसलियो की तिपाई पर टिका रखा है और उससे वह मोतिमा की चमडी भी खिचवा लेगा।.. और पूरे सत्रह वर्षो तक मोतिमा ने, अपनी देह दुखा-दुखाकर, रॉयल फोटोग्राफर मस्ताना के लिए शराब-शिकार और सिगरेट का बदोबस्त किया था।

कहने-भर को मोतिमा सुहागिन थी, घर-गृहस्थी वाली थी, मगर जिस साँझ की बेला और सुहागिने अपने घरो मे देवताओ के नाम के दीपक जलाया करती थी, वही पवित्र साँझ मोतिमा के घर मे आते ही अपवित्र हो जाती थी। दिखाने-भर को ही रॉयल-फोटोग्राफर मस्ताना ने कैमरा

रख रखा था, ताकि सभी लोग खुल्लमखुल्ला यह न कह सके, कि औरत से वेश्या-वृत्ति कराकर, उसकी कमाई खा रहा है। मगर, कभी-कभार ही वह उसका उपयोग करता था। 'फोटोग्राफी' करके ही गुजर कर लेना उसके लिए एकदम कठिन था। मोतिमा से पहले भी वह घरवाली की कमाई ही खा रहा था। मोतिमा को लाने के साल ही उसकी चौथी 'घरवाली' सुशीला की देह टूटी थी और उसी साल मोतिमा हाथ लग गई थी।

गोपी भौजी कहती थी, कि औरत की छातियाँ दूध पनपने पर पवित्र हो जाती है। और, सारी देह अपावन हो चुकने पर भी, मोतिमा ने यह सपना सँजोए ही रखा था, कि उसकी छातियो मे भी दूध पनपे। एक आशा यह भी थी, कि शायद, बाल-बच्चे हो जाने पर बृजेन्दरसिह को उसपर कुछ दया आ जाए, बाल-बच्चो पर ममता ही हो जाए, या कि देह को अपवित्र कर जानेवाले शराबी-कबाबी ही उसे 'हराम' समझने लग जाएँ।

मगर ऐसा भी तो नही हो सका। पाँच वर्षों के बाद एक लडकी हुई थी, तो भी देह का दुःख नही घट सका। और आठवे बरस हरेन्दर हुआ था, तोभी नही। तेरह वर्षो की आनन्दी हो चुकी थी, दसवाँ हरेन्दर को लग गया था और सैंतीसवाँ मोतिमा को, तब जाके शराबियो-कबाबियो से धीरे-धीरे पिण्ड छूटने ही लगा था, कि फोटोग्राफर मस्ताना ने उसे राक्षसो की तरह सताना शुरू कर दिया था। वह अब आनन्दी से पेशा शुरू करवाना चाहता था।

× × ×

थू-थू-थू

"थू तेरी मरद जात के मुँह पर, रे, जो कन्या का गोश्त कसाई की तरह बेच खाना चाहता है, मुसटण्डे!"—सत्रह वर्षो से लगातार पातक झेलते रहने पर भी, पशुवत मूक ही रह जाने वाली मोतिमा पिछले साल एकदम विकराल हो उठी थी और उसने फोटोग्राफर मस्ताना के रॉयल चेहरे को अपने थूक से भर दिया था—"अत्थू, तेरी मरद जात को जनमाने वाली को·· वाले की···मे कीडे पड जावे, चोट्टे! जिसने तुझ-जैसे राक्षस को पाल-पोसकर बडा किया, उसके हाथ-पावो को गिद्ध लग जाएँ,

बदजात! स्साले, तू तो कोई मेरा खसम थोडे है, भड़ुवा है, भड़ुवा! भड़ुवा स्साले! मेरी आनन्दी के लिए पाप बोलेगा, तो अभी तो सिर्फ थूक ही रही हूँ, मूत दूँगी, तेरे मुँह मे मूत!"···और उस दिन, बात-बात पर पाँवो से बूट उतारनेवाला मस्ताना फोटोग्राफर रणचण्डी-जैसी बिफरती मोतिमा के विकराल स्वरूप को देखता ही रह गया था। उसे इतना भी होश नही रहा था, कि मुँह पर से थूक तो पोछ ले।

मोतिमा ने आनन्दी और हरेन्दर को बुलाकर अपनी छाती से चिपटा लिया था और कमर मे से सिलँगचौर घाटी की हरी घास काटने वाली दराती निकालकर, रॉयल-फोटोग्राफर की ओर ताने हुए, घर से बाहर निकलने लगी थी—"परमेश्वर ही जानता है, रे ससुरे, कि कैसी मोहिल और कैसी पवित्र देह तेरे साथ लेकर भागी थी मै। मै क्या जानती थी, कि तू मनुष्य के भेष मे चाण्डाल का अवतार बनकर आया हुआ था। बूचड-कसाई भी ऐसे गोश्त नही बेचते होगे, कसाई, जैसे तूने मुझ दुखियारी की देह बेची है।·· क्या करती, कसाई के पाले पडी गाय थी मै, इसी आशा के सहारे दिन काट रही थी, कि बाल-बच्चे हो जाएँगे, तो शायद तुझ नर-राक्षस के दिल मे भी कभी दया-ममता जाग उठेगी।· ·मगर, कमीने, तूने मेरी छाती के दूध की भी लाज नही रखी। और मै अभागिनी आनन्दी–हरेन्दर के सहारे अपना प्राण पर्वत-जैसा ढोती रही, कि बालक सयाने होगे, तो इस नरक से मुक्ति मिलेगी और अपना अन्त समय सुख से काटूँगी। मगर, तुझ चमार से मेरी आँखो का यह सपना भी नही देखा गया? धिक्कार है, रे हरामखोर, धिक्कार है! तुझे भी, तेरे जनमानेवालों को भी। कमजात, मेरी कन्या पर कुदीठ डालकर शराब-कबाब उडाने के सपने देखता है, रे तू? लगा मेरी और मेरे बालको की टाँगो के नीचे अपना मुँह और हमारा मूत पी, मूत!·· हट स्साले, उधर ही खडा रह। इधर को आएगा, तो स्साले का गला इसी दराती से काट दूँगी और तेरे मस्ताने जिरम और शराब-कबाब उडाने के शौकीन मुँह को चीर कर रख दूँगी···।" बृजेन्दर फोटोग्राफर तो मर्द ठहरा, चौडी छाती वाला मर्द! सो मोतिमा की

गालियाँ सहन करते हुए, चुपचाप, अपनी ही ठौर खडा रह गया था और मोतिमा, अपने बच्चो को कलेजे से लगाए, घर से वाहर निकल आई थी।

× × ×

चली तो आई थी मोतिमा, मगर न रहने का, न दर-गुजर का कोई ठिकाना। निरुद्देश्य शहर की लम्बी-चौडी सडको पर भटकती मोतिमा नारायण तेवाडी देवाल बस्ती के भोटिया धर्मशाला की ओर चल पडी थी। और आज भी उसी धर्मशाले मे ही कसाई की रेती हुई गाय-जैसी विलख रही है।

पिछले बरस फोटोग्राफर का कसाईघर छोडकर, अपनी वेटी और वेटे को साथ लिए, यही रात काटी थी मोतिमा ने और रात-भर, विपत्ति से टूटे-मुरझाए हुए अपने बालको को छाती से लगाए हुए रोती ही रह गई थी कपाल फूटी, कि अब पालन-पोषण कैसे करेगी इन छौनो का? कोई रास्ता ही नही सूझता था अभागिनी को।

दूसरे दिन की दोपहरी तक भी मोतिमा धर्मशाले के अन्दर ही रह गई थी। भीख माँगने के अलावा और कोई उपाय ही नही सूझ रहा था। कभी सोचती थी, कि मजदूरी कर लेगी, मगर मजदूरी करती किसके यहाँ? बच्चो को छोडकर जाने को भी जी नही चाहता था, कि कही बृजेन्दर मस्ताना आकर, उठा न ले जाए जवर्दस्ती। मोतिमा के रहते तो बृजेन्दर क्या, कोई लाट-गवर्नर भी उसके बच्चो को हाथ नही लगा पाएगा—इतना मोतिमा ने निश्चित कर लिया था। दराती की धार और अपनी शक्ति पर भरोसा था उसे। दु ख तो अपार झेले थे, मगर बच्चो को छाती से लगाते-लगाते काँठी मजबूत हो गई थी और सुरक्षा की भावना ने रणचण्डी का जैसा रोष भर दिया था मन मे।

·· और फिर रात घिर आई थी। मगर वच्चो के भूखे पेटो के लिए, अपने असख्य आँसुओ के अलावा, मोतिमा दूसरी कोई चीज नही जुटा पाई थी। मोतिमा भी नही जानती थी, कि किन पुरुषो का अश उसके बच्चो मे था, मगर रक्त-दूध तो निश्चित रूप से उसीका था। और चूँकि दोनो मे उसीका रक्त-दूध घुला हुआ था, सो उसकी व्यथा, उसके दु ख से दोनो बच्चे

परिचित थे। भूख मे झलपने थे, मगर 'माँ, भूख लग गई है,' नही कहते थे। जानते थे, माँ के पास तो सिर्फ उसका खून और दूध था, पिला चुकी थी। अब सिर्फ आँसू शेष थे, और उनसे भूख की ज्वाला शान्त नही हो सकती थी।

बच्चे तो जेठ की धूप मे मुरझाए हुए डाल-टूटे फूलो की तरह मौन थे, मगर मोतिमा के हृदय मे तो हाहाकार मचा हुआ था। और मोतिमा, एकाएक, बादलो के बीच से चमकनेवाली बिजली-सी उठ बैठी थी, कि बच्चो के लिए गास-टुकडा जुटाएगी नही, तो मातृत्व कलकित हो जायेगा।' ' और उस रात मोतिमा ने दो-चार घरो मे भीख भी माँगी थी। रोटी के टुकडे लेकर लौटते समय, बीरदेव के गल्ले की दुकान के बाहर लगी गुड भेलियो की ढेरी मे से एक गुड की भेली भी चुरा लाई थी।''' दुकान की लालटेन बहुत मद्धिम रोशनी दे रही थी और ग्राहक जुटे हुए थे। बीरदेव सौदा तौलने मे व्यस्त था और इसी बीच एक गुडकी भेली मोतिमा की धोती मे ढँक गई थी।' यो, उस रात, पहली बार मोतिमा ने भीख भी माँगी थी और चोरी भी की थी। चोरी इसलिए, कि रोटियाँ तो चार-पाँच बासी-ताजी मिल गई थी, मगर उन्हे लेकर लौटते समय बीरदेव की दुकान के बरामदे मे लगी गुड की भेलियो की ऊँची ढेरी मोतिमा को दिखाई दे गई थी। और मोतिमा के मुँह मे पानी भर आया था, कि गुड के साथ रोटी के टुकडे खाएँगे, तो बच्चो को सुख मिलेगा। बच्चो को पातक न घेर ले, इसलिए मोतिमा रॉयल-फोटोग्राफर के मुँह पर थूककर चली आई थी। '''और बच्चो को सुख मिलेगा, यही सोचकर, मोतिमा ने हरेक काम किया। लोगो के घरो मे भीख भी माँगी, उनके जूठे बरतन भी घिसे और मौका लगा, तो चोरी भी की। कभी-कभार पकडी भी गई, तो शेरनी की तरह बिफरकर मुकाबले मे खडी हो गई और किसी की भी कभी यह हिम्मत नही हुई, कि मोतिमा की देह को पकड सके।

और मोतिमा, अपने दुर्धर्ष पौरुषेय व्यक्तित्व के कारण, मोतिमा मस्तानी के रूप मे मशहूर हो गई।

ग्यारह

सत्रह बरस अलमोडा शहर मे रहकर, मोतिमा को भी लोगो की दीठ-नियत जॉचने-परखने का कौशल आ गया था, इसीलिए गुलाम अकबर पठान और हव्बन बूचड, उसकी स्थिति का सुराग लगा लेने के बाद, बारी-बारी से उसके पास आये थे, तो मोतिमा ने उन्हे ऐसा लताडा था, कि गुलाम अकबर पठान 'तौबा-तौबा' करते हुए वापस लौटा था—"अरे, बाप्परे! पहाड का अदर भी ऐसा शेर का माफिक खूँख्वार औरत हो सकती है, ऐसा हमको किदर पता था? वोई-वोई, वो मस्तानी मादर··तो बोत हरामजादी औरत। अइसा जिदादिल औरत हमसे शादी बना लेता, तो वोई उसका भी तबियत खूश, वोई हमारा भी तबीयत खूश!"

मोतिमा ने पहले ही सोच लिया था, कि नारी-सुलभ शील-सकोच रखने से गुजर नही होगी। आज तक जितने पुरुष उसे मिले थे, सभी ने उसके मन मे अपने प्रति घृणा ही उपजाई थी। मोतिमा जानती थी, कि जैसी कुदृष्टि कुछ बरस पहले तक उस पर लोगो की रहती थी, अब उसकी सयानी होती आनन्दी पर पडेगी। एक बार बेटी की जिदगी खराब हो गई, तो उसे भी अपनी मॉ की तरह ही पातक झेलने पडेगे।

मोतिमा यह भी जानती थी, कि दया और ममता सबको सिर्फ अपनी ही मॉ-बहनो तक पवित्रता लिए रहती है। दूसरो की मॉ-बेटियो के प्रति तो पुरुषो की दया-ममता को पातकी होते देर नही लगती। सो, मोतिमा ऐसे किसी भी प्रलोभन से बचना चाहती थी, जिसमे फॅसकर उसे अपने बच्चो की जिदगी की बरबादी ही देखने को मिले। शील-सकोच तो सुहागिनो और रिश्तेदारो के सहारे निश्चित रहने वाली औरतो को ही शोभा दे सकता है—मोतिमा सोचती थी—वह तो बेसहारा रॉड-जैसी लावारिश हो चुकी है। सो, शील-सकोच को तिलाजलि देकर, मोतिमा ने विकराल रूप धारण कर लिया था और जिस को भी अपने बच्चो की ओर बुरी नजर

उठाते देखती थी, उसीको इस तरह लताडती थी, कि फिर दूसरे देखने-सुनने वालो की हिम्मत नही पडे। ऐसी-ऐसी भयानक गालियाँ मोतिमा देती थी, कि सुनने वालो का रेला उमड आता था उसके इर्द-गिर्द, मगर टोकने-रोकने का साहस कोई नही जुटा पाता था। इस भय से, कि कही मोतिमा अपनी जीभ उसी ओर न मोड दे।

पिछले जेठ की ही बात है। टीन का कनस्तर लेकर, आनन्दी और हरेन्दर भोटिया-धारा पानी भरने गए थे। पानी की धारा बहुत पतली हो गई थी, सो पानी भरने वालो के 'नम्बर' लगने लग गए थे। विशेषकर घरेलू नौकरो और पेशेवर पानी बेचने वालो की भीड लगी रहती थी वहाँ।

मोतिमा के कानो तक खबर पहुँची, कि रिटायर्ड मेजर विक्रमसिह के नौकर नथुवा ने आनन्दी को छेडा, गदी-गदी बाते की और हरेन्दर को थप्पड मारे। आनन्दी को छेडे जाने की बात सुननी थी, कि दराती हाथ मे लिए मोतिमा भोटियाधारा की और दौड पडी थी। चुगी-चौकी के पास घनश्याम मुशी ने टोका भी था—"क्यो हो, मोतिमा भौजी, फ्रण्टीयर मेल-जैसी कहाँ को दौड रही हो?"

मोतिमा एक क्षण के लिए वही ठहर गई थी—"तू अपनी चुगी की रसीदे काट, रे स्साले!"

और, भोटिया धारा पहुँचते ही, मोतिमा ने, वहाँ एकत्र सभी की ओर अपनी दराती तानते हुए, जोर-जोर से चुनौती दी थी—"कौन है, रे तुम सालो मे वह नथुवा अपनी माँ का खसम! आ, रे स्साले, अब जरा मेरे सामने आ। कठुवे, तेरा कलेजा चीरकर जो मैने नही खाया, तो मेरा नाम भी मोतिमा नही।...मेरी बेटी को छेडता था, रे कमीने? आ, आ स्साले जरा मुझे भी तो छेड के देख, कि हगती हूँ या नही तेरे कमजात मुँह मे। स्सालो क्या समझते हो, कि मोतिमा राँड-लावारिश अकेली औरत जात है? अरे, चमार स्सालो, तुमने अभी मोतिमा का कालिका-रूप नही देखा है।"

भय और आतक के मारे सभी सुन्न पड गए थे। सभी को चुप देखकर, मोतिमा फिर दहाड उठी—"क्यो नही बोलते हो, रे सालो ?"

नथुवा आनन्दी के बताने से पहले ही भागने का उपक्रम कर रहा था, सो सीधे देवाल की ओर दौडने लगा। उसका भागना था, कि मोतिमा ने सडक पर से दो बडे-बडे पत्थर उठा लिए और एक खीचकर मारा, जो नथुवा के पॉव को छूता हुआ निकल गया, दूसरे को हाथ मे उठाए-उठाए ही मोतिमा जोर से चिल्लाई—"भागता है, रे स्साले ? भाग तो सही, ठीक तेरी गुद्दी ही नही फोडी मैने, तो मेरा नाम भी मोतिमा नही ! ठहर जा स्साले, अगर मरना नही चाहता है तो "

और नथुवा, भय से थर-थर कॉपता, अपनी ही जगह पर रुक गया था। मोतिमा दौडी थी और उसके सिर के बाल पकडकर गरदन मे दराती फँसाती हुई चिल्लाई थी—"और छेडेगा, रे कमीने, मेरी आनन्दी को ? चमार साले, मैं तेरी मॉ को के रख दूँगी। तूने मुझे समझ क्या रखा है ? एक तू ही क्या, रे साले, जितने भी यहॉ खडे है, सब साले सुन ले। जिस साले ने मेरे बालको को बुरी नजर से देखा, उसकी ऑखे निकालकर, गिद्धो को खिला दूँगी। क्यो रे कमीने ? तेरे घर मे कोई तेरी बहिन नही है, रे, जो मेरी आनन्दी को छेडता था ? अत्थू, तेरी मरद जात के मुँह पर पेशाब करूँ सालो, तुमको दूसरो की मॉ-बेटियो को बुरी नजर से देखते हुए शरम नही आती है, रे ?"

गालियॉ देते-देते ही, मोतिमा ने नथुवा के सिर के बालो को खीच-खीचकर उसे जमीन पर गिरा दिया था और उसकी छाती पर पॉव रखते हुए दूने वेग से चिल्लाई थी—"जहॉ से तुम मरद साले पैदा होते हो, मॉ की उसी पवित्र कोख पर तुम लोगो की बुरी नजर भी रहती है। मेरा वश चलेगा, तो एक-एक मरद के मुँह मे उसी ठौर से मूत दूँगी। और कहूँगी, सालो, और बुरी नजर डालो अपनी मॉ की ··मे ! अत्थू··अत्थू··"

नथुवा को तो मोतिमा साक्षात अपनी मृत्यु के रूप मे दिखाई दे रही थी। उसे यह देखकर, एकदम प्राणातक कष्ट हो रहा था, कि मोतिमा का पेटी-

कोट घुटनो से ऊपर तक उठा हुआ था और मोतिया धारा के पास खडे सारे लोग तमाशा-जैसा देख रहे थे। मोतिमा ने पहले ही चेतावनी दे दी थी, कि, 'जो साला भी मुझे पकडने को आएगा, पहले उसी की गुद्दी फोडूँगी!'

"मोतिमा काकी, तुम्हारे पैर पकडता हूँ मै। ठिठोली-ठिठोली मै गू खा बैठा था, जरा ओछी बात मुँह से निकल गई थी! ··और तुम्हारे हरेन्दर ने मुझे माँ की गाली दी थी, काकी! इसीसे मै थप्पड मार बैठा। तुम हरेन्दर से ही पूछ लो, काकी, कि मै उसे रोज-रोज बिलायती मिठाई और बिस्कुट खिलाता हूँ या नही। ·पिछली बार हरेन्दर मेजर साहब के बगीचे मे से नाशपातियाँ चोर रहा था। मेजर साहब ने मुझसे कहा, कि पकडकर पीटो साले को। मगर, तुम अपने हरेन्दर से ही पूछ लो, काकी! · मैने चुपके से नाशपातियाँ देकर, इसे वहाँ से भगा दिया था!· क्या जानता था, काकी, कि जरा-सी बात पर तुम इस तरह मुझे मौत से भी बुरी सजा दोगी? मोतिमा काकी, इस समय मेरी भी माँ होती, तो तुम यो दराती लेकर मेरी छाती पर नहीं चढ सकती थी।"—कहते-कहते, नथुवा की आँखो से आँसुओ की धारा बह चली थी—"छाती पर ही पाँव कब तक टिकाए रहेगी, काकी? दराती से मेरा कलेजा निकालकर खा ले। तूने मुझे जन्माया होता, तो तुझे दर्द होता मेरा। पराई, बिना माँ-बाप की सन्तान का कलेजा खाते हुए थोडे ही कसक लगेगी तुझे? ··"

···और मोतिमा की जीभ जैसे एकाएक एकदम पथरा गई थी। नथुवा को उसने छोड दिया था। आनन्दी और हरेन्दर को लेकर एकदम गूँगी-पगली-सी लौटने लगी थी, कि उदयशकर बाँसुरी वाले ने अपना पानी का कनस्तर मोतिमा के कनस्तर मे उलटा दिया—"मोतिमा काकी, पानी लेती जाओ।"

पानी का कनस्तर लेकर, मोतिमा धर्मशाले को वापस चली थी, तो एक बार पीछे मुडकर, उसने नथुवा की ओर देखा था और रो पडी थी—"बिना माँ-बाप का छोरा है, मै क्या जानती थी? बावला कहता था, मोतिमा काकी तूने जनमाया होता, तो तुझे दरद होता।···अरे, तुम साले

क्या जानोगे, कि मोतिमा काकी की छाती मे कितनी व्यथा, कितना दर्द पत्थर के नीचे की कोमल पत्ती-जसा दबा हुआ है ? सब साले मुझे 'मोतिमा मस्तानी, मोतिमा मस्तानी' कहते है और मुझे राक्षसी-जैसी समझते है। कोई साला यह नही सोचता-समझता, कि मोतिमा आखिर ऐसी क्यो बनी है ?"

"क्यो रे हरेन्दर, नथुवा तुझे विलायती मिठाई और बिस्कुट खिलाता है ?"

"खिलाता तो है, माँ ! मगर कहता है, 'तू मेरा साला लगता है, इस-लिए खिलाता हूँ।' कहता है, कि 'मै मोतिमा मासू से तेरी दीदी को मागूँगा।' कभी कहता है—'मेरी माँ तो है नही, मेरी शादी कौन करेगा ?' माँ, तुमने नथुवा को इतना क्यो मारा ? मैंने जब उसे गाली दी थी, तो दीदी ने मुझे थप्पड मारा था, कि ऐसे गालियाँ नही दिया करते।"

·· और उस रात मोतिमा ने एकाएक सोचा था, कि नथुवा अच्छा लडका है और रोटी-रोजी से लगा रहा, तो मोतिमा अपनी आनन्दी उसे सौप देगी। न ठीक से पढी-लिखी है, न बहुत रूपवान ही है, मोतिमा कहाँ से खोजेगी उसके लिए अच्छा वर-घर ?

मगर, दूसरे ही दिन मोतिमा को हरेन्दर ने आके बताया था, कि 'माँ, नथुवा मेजर साहब के यहाँ से भागकर, पलटन मे भर्ती हो गया है । मुझे बाजार मे मिला था, एक रुपया दे गया है। नथुवा बडा भला है, माँ ! कहता था, कि पलटन से साल-भर बाद छुट्टियो पर लौटेगा, तो मेरे लिए बहुत सारी मिठाइयाँ और कपडे लाएगा।' 'और तुमसे हाथ जोडकर पैलागन कहने को कहा था।'

"और भी कुछ कहता था, रे, वह बावला ?"

"और ?······और कहता था, माँ, कि 'जिंदगी रहेगी तो पलटन से छुट्टी मे लौटकर, मोतिमा काकी के पास जरूर आऊँगा।' · "

"और ?"

"और ?···और कहता था, 'अपनी दीदी आनन्दी से झगडा मत

करना। माँ और दीदी का प्यार पाने को बहुत बडी तकदीर चाहिए।' ·· और माँ, वह रो भी रहा था। कह रहा था, कि 'मैं कपालफूटा अभागा हूँ।'···माँ, नथुवा तो मुझसे बहुत सयाना है, फिर भी रोता है। तुम तो मुझे रोने ही नही देती कभी, कि बेटा, मरद बच्चे की आँखो मे आँसू अच्छे नही लगते ! ·· "

"तो, ठीक ही तो कहती हूँ, रे बावले ! तू खुद ही रोता रहेगा, तो मेरे आँसू कैसे पोछेगा, रे ? एक दिन कभी ऐसा भी तो आ सकता है, कि तेरी माँ पगली हो जाए ? · और लोग उसे 'मोतिमा मस्तानी-मोतिमा मस्तानी' पुकारते हुए, पत्थर मार-मारकर भगाएँ ?"

"माँ, तुम मुझे भी पलटन मे भरती करा दो। फिर जो साले तुम्हे पगली कहके पत्थर मारेगे, उनको राइफिल की गोलियो से उडा दूँगा। जो साले तुम्हे गाली देगे, मै उनकी माँ को · "

"चुप, चट छोरा कही का ! ऐसे गाली देना नही सीखते। बेशरम नही बनते, बेटा !"

'बेशरम नही बनते, बेटा !' कहते-कहते, मोतिमा को एकाएक ऐसा लगा था, कि सिर पर धरे पानी के कनस्तर की तली मे से डामर की परत उखड गई है। पानी चूने लग गया है। पिछले चार-पाँच महीनो मे कितनी बेशरम, कितनी बेहया हो चुकी थी वह ? जिस मोतिमा को गोपी-मधुली भौजियो के साथ ठिठोली करते-करते ही ऐसी घनी लाज लगती थी, कि कपोलो पर सिन्दूर-जैसा बिखर जाता था, आज वही मोतिमा आधी टाँगे, आधी छातियाँ उघाडे लोगो को ऐसी-ऐसी गालियाँ देने लगी है, कि सुन-सुन करके पुरुष भी शरमा जाते है।

लगातार सत्रह वर्षों तक रॉयल फोटोग्राफर के यहाँ नारकीय-जीवन बिताते हुए, मोतिमा भूसी-जैसी सुलगती रही थी और वही से एकदम खतड्ुवा की आग-जैसी भभकती हुई बाहर निकली थी, तो फिर वह भयकर वेदना की आग कभी बुझ ही न पाई। अब तो मोतिमा ऐसा अनुभव करती थी, कि चौबीसो घडी मर्दों को गन्दी-गन्दी गालियाँ देती रहे, प्रचण्ड स्वर

औरत जात हो बहना, तुम्हे तो मुझ अभागिनी पर दया आनी चाहिए ? बता, लली, ऐसे ही दुखियारी सन्तानो के गास-टुकडे जुटाने के लिए तुझे भी भीख माँगनी पडती, तुझे भी चोरी करनी पडती और तुझे भी मेरी तरह से चूतडो पर लात-जूते-डण्डो की मार सहनी पडती और तेरी छातियो को भी कोई गरम चिमटे से दाग देना, तो तू क्या करती ? घूँघट काढ के, लाज-शरम की मारी बैठी रहती ? अपनी भूखी सन्तान का अपने ही हाथो से गला घोट देती ?···"

विलाप करते-करते, मोतिमा अपनी छातियाँ खोल देती थी और दोनो छातियो पर पडे हुए लाल चिमटे के दागो पर उसके आँसू शिवलिग के ऊपर लटके घडे के पानी की बूँदो की तरह टपक पडते थे।··· और उसे थोडी-सी शान्ति मिलती थी।···और एकाएक वह शरमा जाती थी, कि हरेन्दर पाँव से लिपटा खडा है।··और एकाएक उसे शरम लग आती थी, कि कम-से-कम बेटे की लाज तो रखनी चाहिए।

बारह

रायल फोटोग्राफर बृजेन्दरसिह की फोटो न-जाने कबसे मोतिमा के पास पडी हुई थी। आज उसपर बार-बार थूकते हुए, मोतिमा की विक्षिप्त-सी आत्मा को एक सतोष मिल रहा था—"अत्थू-अत्थू, स्साले! जैसे तूने मेरी जिंदगानी की मैया मारी है, ऐसे ही ले थूक-ही-थूक, तेरा पापी जिसम भी भर दूँगी मै। नही तो, बतारे, स्साले! मेरे हरेन्दर को कहाँ को उठा ले गया है तू? बता, स्साले डाकू!..."

मोतिमा पूछती जाती थी और बृजेन्दरसिंह की फोटो को लतियाती जाती थी—"बतारे, स्साले! ये छाती पर चिमटो के दाग इसी दिन के लिए झेले थे मैंने, कि मैं अपनी सतान के लिए भीख मॉगूंगी, चोरी करूंगी और अपनी मैया मरवाऊँगी और तू स्साला चार सौ-बीस चोर-जैसा आकर के मेरे कलेजे के टुकडो को चीर ले जायगा?"

"बता, स्साले, बता!"—चिल्लाते हुए, मोतिमा ने एकदम पागलो की तरह अपनी छातियो को पीटना शुरु कर दिया और, जोर-जोर से विलाप करती-करती, भोटिया धर्मशाला की उस उजाड कोठरी के फर्श पर लोटने लगी—"ओ, मेरी आनन्दी! ओ, मेरे हरेन्दर! अरे, तुम दोनो अपनी इस अभागिनी माँ के खसम भी आखिर मुझको छोड ही गए, रे! अरे, स्सालो तुम दोनो के कारण ही तो मैंने चूतडो पर डण्डे और छातियो पर लाल चिमटे सहन किए—और आज तुम दोनो अपनी मॉ के खसम भी मुझ रॉडी को इस उजाड कोठरी मे सिर पटकने को छोड गए? ..स्सालो, आखिर तुमको भी अपना वह चमार बाप रँडुवा ही प्यारा लगा, रे! मोतिमा राँडी को तो तुमने एक बच्चे जनमाने वाले खड्ड से कुछ ज्यादा समझा ही नही? ऐसे ही एक दिन इस उजाड कोठरी मे अपनी इस महतारी राँडी को विलाप करते हुए छोड जाओगे तुम अपनी मॉ के खसम करके जो मैं जानती, तो एक खड्ड से निकाला था तुम दोनो को, दूसरे मे दबा भी देती!

अठारह बरसो तक तुम कमजातो के लिए अपना शिकार गलाती रही और आज तुम निठुर साले भी मेरी छाती फोड के चले गए! कहाँ है तू, आनन्दी ? कहाँ है, रे तू हरेन्दरा ?···· छौनो, कहाँ हो रे तुम मोतिमा पापिणी की सतान ?·· ···"

विलाप करती, बकती हुई मोतिमा अपना सिर फर्श पर पटकती चली जा रही थी—"कहाँ है, रे तू परमेश्वर साला भी···? स्साले, पहले तूने ऐसी मोतिमा पापिनी को जनम ही नही देना था। जनम दिया था, तो ऐसी चमार सतानो की महतारी नही बनाना था, जो आज मुझ अभागिनी के मुँह में मूत के अपने बाप साले के साथ चले गए! "

× × ×

परमेश्वर को गालियाँ देते-देते ही, मोतिमा को याद आया, कि आनन्दी-हरेन्दर को पालने-पोसने के लिए जब-जब भीख माँगने निकली थी, तो यही प्रार्थना करती-करती कि—हे परमेश्वर, अपने छौनों के लिए हाथ पसारने जा रही हूँ। तुम तो दया के अवतार हो, स्वामी! देने वाले के घट मे बैठ जाना!

और चोरी करने निकलती थी, तो नगी देह मे तेल मोसा[1] चुपडते-चुपडते ही, बीच-बीच मे, अपने काले हाथ जोडती रहती थी—"हे परमेश्वर, मेरी लाज रख लेना, स्वामी! तुम तो छिमा के अवतार हो, प्रभू! लाचार होकर के अपने छौनो के लिए गास-टुकडे जुटाने जा रही हूँ। इस अँधेरी रात मे मुझ नगी चुडैल पापिणी का और कोई रक्षक नही है, स्वामी!"

और जब-जब भीख ज्यादा जुट जाती थी और निरापद रहकर छोटी-मोटी चोरियाँ करने मे सफलता मिल जाती थी, तब-तब मोतिमा अपने दोनो हाथ जोडकर, आँसुओ का अर्घ्य देती थी—"नर और नारायण मे बडा अतर होता है। नरों ने मेरा मन घोर सतापो की आरी से चीर दिया है। नारायण मेरे अदर की दुखियारी माता के सताप को पहचानते है, इसीलिए चोरी-जैसा हीन करम करते हुए भी उनकी छाया मुझ पर बनी रहती है।·"

१. तवे की स्याही।

और जब चोरी करते मे लकडी-पत्थरो की चोटे खाकर लौटती थी, तब भी उसके रुँधे हुए कठ से यही बोल निकलते थे, कि—"स्वामी, नारायण का पवित्र नाम लेने के लिए नारियाँ भक्तन बनती है। कीर्त्तन गाती है, आरती करती है। मैं पापिणी चोरी का हीन करम करने के लिए तुम्हारा पवित्र नाम जपती हूँ। उसीका यह दण्ड मुझको मिला है। मेरे अपराध छिमा कर देना, स्वामी!"

हीन करम करते समय नारायण का पवित्र नाम जपने के ऐसे-ऐसे दण्ड मिले थे मोतिमा को, कि मोतिमा ही दु ख-सुख पूछने वाली औरतो से कहा करती थी—"दिदी, उस रात का दु ख क्या पूछती हो, लली? जैसा अत्याचार मैने सहा, कोई पाथर सहता, तो वह भी पिसिया जाता। ले मेरे साले अपनी मोतिमा महतारी के खसम चपरासी-चौकीदारो से लेकर मास्टर-प्रिन्सीपिलो तक का नदादेवी के मेले का जैसा रेला उनकी इस महतारी की छाती पर चढ आया।···"

'इस छाती पर' कहते-कहते, मोतिमा अपने स्तनो पर से कुर्ती उठा देती थी और चिमटो के दाग दिखाते-दिखाते बौरा उठती थी—"ये डाम उस चौकीदार साले के रखे हुए है। ठैर रे, साले! होगा नारायण के यहाँ इन्साफ, तो कोई-न-कोई ऐसे ही लाल चिमटो के डाम तुझको जनमानेवाली की छाती मे भी धरेगा, जैसे तुझ अत्याचारी ने भूख से बिलखने वाले बालको की इस अभागिनी महतारी की छाती मे लगाए है!"

× × ×

उस भयकर रात की बात याद आते ही मोतिमा की सारी देह विफर उठती थी, जो उसने—'मॉडर्न कालेज' के बोर्डिंग-हाउस मे चोरी करने के प्रयत्न मे पकडी जाने के बाद—चपरासियो, चौकीदारो और मास्टरो के बीच मे बिताई थी।

भीख माँगने, मजदूरी करने से जब तक दिन कटते रहे थे, मोतिमा ने चोरी करने के लिए कमर कसी नही। उसकी उग्र प्रकृति और प्रचण्ड वाणी के कारण, घर-गृहस्थी वाले सभ्य जनो ने उसको मजदूरी पर लगाना

बद कर दिया । भीख माँगने से बच्चो का पेट भरना ही कठिन था और मोतिमा ने उनको स्कूल मे भर्ती करवा दिया था ।

और तब मोतिमा को एक रात यह सकल्प भी करना ही पडा था, कि—मोतिमा रे,भीख मजदूरी से बालको की जिदगी सँवारना तेरे वश का काम नही। तुझे तो कुछ और अपना हिया कठोर बनाना पडेगा, तभी तेरे बालको के लिए फीस-किताबो के पैसे जुटेगे।

धीरे-धीरे मोतिमा ने, रात-बिरात निकलकर, छोटी-मोटी चोरियाँ करना शुरू कर दिया था। कही से बाहर पडे हुए बरतन-कपडे, कही से लकडियाँ, कही से घास और कही से सब्जी, फल—जो-कुछ भी उपयोगी वस्तु मिल जाती, मोतिमा उसे बाज की तरह अपने हाथो से दबोच लाती थी और एकदम सस्ते दामो मे इधर-उधर बेचकर, अपनी गुजर-बसर करती थी। पास-पडौस वालो की मदद के नाम पर दो-चारो के हाथ ही आगे बढते थे, उनमे भी ज्यादा बरकत नही थी। एक गुसाँई सागवाला उसे नियमित रूप से साजी-बासी सब्जी दिया करता था, बस। गुसाँई सागवाले का एक दूर का रिश्तेदार नटवरसिह—जो चितई के सुप्रसिद्ध गोल्ल-मदिर का पुजारी था—कभी-कभी नारायण तेवाडी देवाल आया करता था। जब-जब आता था, गुसाँई की दुकान के आस-पास खेलते मोतिमा के बच्चो को जलेबियाँ-पकौडियाँ खिलाया करता था। मोतिमा उसे भी फटकारना चाहती थी, मगर परमेश्वर का पुजारी मानकर, चुप रह जाती थी। एक—भोटिया धरमशाले के ही आखिरी कोने मे कमरे मे पडा रहने वाला—भगतुवा कोढी और था मददगार, मगर मोतिमा आनन्दी-हरेन्दर को डाँटती रहती थी—"उस कोढी के नजदीक मत जाना।" मगर, इतने-से सहारो से तो बच्चे पालना कठिन था।

सो रात को मोतिमा तवे का काला मोसा और सरसो का तेल एक कटोरे मे मिलाती थी और फिर एकदम अवसना होती थी—"हे नारायण, मेरी लाज तू ही रखना नरो की दीठ न पडे मुझपर। तेरी दीठ तो झेल लूँगी, स्वामी, क्योकि तूने तो इस ससार मे हरेक प्राणी को उसी तरह से भेजा है,

जिस तरह ये मेरी आनन्दी और हरेन्दर जनमे थे।"

पाँव के अँगूठों से लेकर, कपाल तक सारी देह मे तेल-झॉई का लेपन करने के बाद, मोतिमा अपने बालो को बिखेर लेती थी और, साक्षात कालिका का जैसा रूप धारण करके, आधीरात को धर्मशाला से बाहर निकल पडती थी—हे, नारायण!

आनन्दी और हरेन्दर को कमरे मे बद करके, बाहर से ताला लगा जाती थी—"हरेन्दरा, टट्टी-पेशाब लगेगी तुम लोग को, तो अदर ही कर लेना बेटे! मैं आकर के अपने-आप साफ कर लूंगी।"

हरेन्दर और आनन्दी दोनो एक-दूसरे से चिपक जाते थे—माँ!

पहले-पहल आनन्दी उसके पाँवो से लिपट जाया करती थी—"माँ, ऐसा विकराल भेष बना करके कहाँ को जा रही तू? हमको पालने के लिए तू जैसे-जैसे दुख सहती है, माँ, उससे अच्छा तो यही था, कि हम दोनो का गला ही घोट देती तू! हमारी जैसी अभागी सतान जनमाने का पाप किसी महतारी के सिर न पडे, माँ!···हम तो"

मोतिमा, अपने काले हाथो से आनन्दी का मुँह बद करती-करती, रो पडती थी—"चुप, मेरी छौनी! मेरी बाट न रोक, बा! तू नही जानती, छौनी, कि तुम लोगो से कितना सुख मिलता है मुझे। गर्भ मे धारण किया है तुम्हे, तो पालना-पोसना महतारी का धरम हो जाता है। तुम दोनो छौने मार जूते-ही-जूते मेरे सिर की खाल उतार लो, मगर ऐसे वचन न कहो, कि मेरा कलेजा ही फट जाए। सो जा, अनू, सो जा, मेरी छौनी। दो-चार बरस जैसे-तैसे पाल-पोस दूँगी, तो दोनो सयाने हो जाओगे। फिर नही होगा मेरा फजीता, बा, फिर तो मै तुम्हारी कमाई के टुकडे खाऊँगी।"

उजाला होने से पहले ही मोतिमा कुछ-न-कुछ बटोरकर ले आती थी।

धीरे-धीरे बच्चे अभ्यस्त हो गए थे और, माँ के जाते ही, एक-दूसरे की छाती से चिपककर सो जाते थे। आनन्दी बिलखती थी—"हरेना, हमारी माँ ऐसे ही दुख पाते-पाते मर जाएगी, तो हम क्या करेंगे, रे?"

हरेन्दर उसके आँसू पोंछ देता था—"मेरे पलटन मे भर्ती होने तक माँ

नही मरेगी, दीदी ।"

और दोनो अभागे धर्मशाले की अधकार-भरी, सँकरी कोठरी मे—अपने आँखो से निकलकर, होठो के पास आ मिलनेवाले आँसुओ की तरह ही— एक-दूसरे की व्यथा मे विलीन हो जाते थे ।

आनन्दी ने कई बार कहा था, कि वह घरो मे बरतन घिसने की नौकरी कर लेगी । हरेन्दर कहता था—"माँ अब तो मै पानी का कनस्टर सिर पर उठा सकता हूँ । उदयशकर बाँसुरी वाले की तरह ही मै भी पानी बेचूंगा । नथुवा कहता था, कि वह मुझे किसी साहब के बँगले मे नौकरी पर लगा देगा ।"

मगर मोतिमा जानती थी, कि आनन्दी को उससे भी ज्यादा भयकर दिन देखने पडेगे और हरेन्दर दूध पीने की उमर मे ही टूट जाएगा । सो उसने उन दोनो को तो डराया ही था—कि, जिस दिन तुम दोनो छौनो मे से कोई अपने मन का काम करेगा, उसी दिन मै भी आत्मघात कर लूंगी ।—साथ ही, दूसरे लोगो को भी सावधान कर दिया था—"कौन है वो स्साले हरामखोर, मेरी आनन्दी से बर्तन घिसवाने वाले ? क्यो, रे स्सालो, तुम्हारी बेटियो के हाथ टूट गए है क्या ? खबरदार, अगर किसी साले ने मेरी आनन्दी को बहकाया तो । अरे, तुम मरद चोट्टो की कमीन नियत को मैं खूब जानती हूँ ।"

कई महीने यो ही निकल गए थे । और उस रात, पूस की सर्दी से पेड-पौधे तक पथराए हुए थे । मोतिमा जानती थी, कि ठड-भरी रातो मे लोग अपने बिस्तरों से बाहर कम ही निकला करते है । जितनी सुविधा उसे सर्दियो मे चोरियाँ करने मे मिली थी, उतनी पिछली गर्मियो मे नही । इतनी सावधानी जरूर रखती थी मोतिमा, कि नारायन तिवारी देवाल से दूर-दूर ही चोरियाँ करती थी ।

महीने मे चार-पाँच राते मोतिमा चोरी करते ही बिताती थी । जब से कार्त्तिक लगा था, मसीर और पूस तक—लगातार सर्दी बढती ही चली गई थी । उसकी अवसबा देह ठड से पथराने लगती थी और मोतिमा सूनी

सडको पर धिर-धिर-धिर-धिर दौडती थी ।

कई मोहल्लो मे तो यह अफवाह फैल गई थी, कि आजकल फलानी ठौर धिरकुली चुडैल का डेरा लगा हुआ है । आधी रात के बाद भैसे की सवारी मे निकलती है और जो कोई उसकी सवारी जाते हुए देख लेता है, उसका कुछ-न-कुछ अनिष्ट जरूर होता है !

थपलिया मोहल्ले मे तो धिरकुली चुडैल का इतना आतक छा गया था, कि रात-बिरात कोई बाहर निकलने का साहस ही नही जुटा पाता था । जिस रात धिरकुली चुडैल की धिरधिराहट करती दौडती हुई सवारी थपलिया मे घूमी थी, उसी रात वहाँ तीन जनो की मृत्यु हुई थी । एक, एक सौ पॉच बरस की बुढिया अचानक मर गई थी, दूसरी एक बच्ची ठीक आधी रात को पैदा होते-होते ही मर गई थी और तीसरे, दिशा फिरने को गए हुए शम्भुदत्त, पालक-लाई की क्यारी मे ही लम्बायमान मिले थे । मोहल्ले के पुरुख जनार्दन-जी के मुँह से तो यही निकला था—"पालक-लाई को खाद देने की बहुत फिकर थी शम्भू को । खाद देते-देते ही परलोक भी सिधार गया । शास्त्रो मे यही कहा गया है, कि जिस वस्तु मे नर की बहुत ज्यादा ममता होती हैं, उसी के बहाने उसके प्राण छूट जाएँ, तो उसे भवसागर से मुक्ति भी मिल जाती है ।"

मगर, बहुत-से लोगो ने शम्भूदत्त की इस भवसागर-मुक्ति का कारण यह भी माना था, कि उसने धिरकुली चुडैल की सवारी जाती हुई देखी थी । बाद मे यह भी पता चला था, कि वह पीतल का लोटा भी गायब हो चुका था, जिसमे शम्भुदत्त जल ले गया था और वह तॉबे की गगरी भी, जिसमे से जल लिया था ।

मोतिमा के लिए ये अफवाहे वरदान ही सिद्ध होती रही थी, मगर शम्भु-दत्त के मर जाने की सूचना से उसे क्लेश ही पहुँचा था, कि—हे नारायण ! आज बेकार मे एक नर-हत्या का पातक भी लग गया मुझ पापिणी को !

मोतिमा क्या जानती थी, कि शम्भुदत्त, पुरुष होते हुए भी, इतने कम-जोर कलेजे का होगा, कि एक दुखियारी औरत के डराने से ही प्राण छोड

देगा ! वह तो उसके घर के बाहर के चबूतरे पर रखी ताँबे की गगरी चोर-ने गई थी। उसे क्या मालूम था, कि घर का मालिक नीचे के खेत मे दिशा फिरने गया हुआ है ! मालूम होता, तो उसे लौटकर सो जाने देती, तब गगरी उठाती। मोतिमा ने तो यह सोचकर ही गगरी को हाथ लगाया था, कि इस घर के मालिक तो इस समय घोर निद्रा मे होगे। मगर मोतिमा ने ताँबे की गगरी को हाथ लगाया ही था, कि नीचे से शम्भुदत्त चिल्ला उठा था—"कौन है रे, गगरी को उठानेवाला ?"

और उसके हाथ के टॉर्च की लाइट सीधी मोतिमा की काली, नगी देह पर ही पडी थी। मोतिमा घबरा गई थी, कि अब फँसी, मगर हाथ मे आई हुई गगरी छोडते भी कलेजा कसकता था। आखिर साहस करके, मोतिमा गगरी को दोनो हाथो मे उठाए भाग गई थी, मगर शम्भुदत्त ने उसका पीछा नही छोडा था। संयोगवश, अँधेरे मे मोतिमा उधर को ही दौडी, जिधर से शम्भुदत्त उसकी ओर आ रहा था। जैसे ही शम्भुदत्त एकदम निकट पहुँचा और टॉर्च जलाया, मोतिमा ने साक्षात कालिका की तरह अपनी जीभ लपलपा दी थी—अ'पै-पैं-पैं-पैं-पैं···

और शम्भुदत्त उसका विकराल रूप देखकर, पालक-लाई की क्यारी मे ही खडा रह गया था। उसकी 'चोर-चोर-चोर' की आवाज भी उसके गले मे ही घरघराकर खामोश हो गई थी। और मोतिमा भाग आई थी। निचले खेत मे उसे पीतल का लोटा मिला था, उसे उठाना भी नही भूली थी, कि दस-बारह आने तो इसके भी मिल ही जाएँगे !

धिरकुली चुडैल का आतक बहुत बडा था और मोतिमा की चोरियाँ बहुत छोटी-छोटी होती थी, सो उन छिट-पुट चोरियो का सबध धिरकुली चुडैल की सवारी मे कोई नही जोड सका था।

मगर पिछले महीने पूस की अँधियारी रात को जब मोतिमा तीसरी बार 'मॉडर्न कालेज' के बोर्डिंग हाउस मे चोरी करने गई थी, तो भीमसिंह चौकीदार ने उसे पकड लिया था।

'माडर्न कॉलेज' में पहले भी दो बार चोरियाँ कर चुकी थी मोतिमा।

बोर्डिंग हाउस के रसोई-घर के बाहर, दोनो बार उसे दो-तीन छोटे-छोटे बरतन और खाली कनस्तर पडे हुए मिल गए थे। किसी की दीठ भी नही पडी, यह परमेश्वर की ही कृपा है।'—मोतिमा ने अपने दोनो हाथ श्रद्धा-पूर्वक जोड दिए थे। एक-दो मास्टरो की दृष्टि कनस्तर-बरतन ले जाती मोतिमा पर पड गई थी, मगर उसका विकराल वेश देखकर, किसी को साहस नही हुआ था कि, दौडकर, पकड ले। बाद मे, उन्होने चौकीदारो-चपरासियो को जगाया था, मगर तब तक तो मोतिमा लापता हो चुकी थी।

मगर, नारायण भी आखिर कब तक मोतिमा को दण्ड नही देते!

तीसरी बार जब मोतिमा बोर्डिंग हाउस के रसोई-घर के बाहर चोरी करने पहुँची थी, तो टीन के कनस्तर को ठोकर लग गई थी। जब तक वह सँभलती, बरतन ढूँढकर बटोरती, तब तक तो भीमसिह चौकीदार ने उसे पकड लिया था और शोर भी मचा दिया था—"आओ रे, आओ! आइए, मास्टर साहब, दौडिए। चुडैल को मैंने पकड लिया है।"

प्रयत्न करके मोतिमा भीमसिह की पकड से फिसल गई थी। भीमसिह को डराने के लिए उसने प्रचड स्वर मे चीत्कार भी किया था, मगर तब तक चारो ओर से बोर्डिंग हाउस के चौकीदारो, चपरासियो और मास्टरो ने उसे घेर लिया था—"पकडो, पकडो, भागने नही पावे ससुरी!"

मोतिमा, कई लोगो की पकड से फिसलती-फिसलती, आखिर उनके कब्जे मे आ ही गई थी। और फिर जो उसके साथ बीती थी, वह दूसरे दिन भोटियाधारा मे पानी भरते समय, उसने श्रीदेव की बौराणी दुर्गावती को सुनाया था—"अब तुम खोद-खोद के पूछ रही हो, बौराणी ज्यू! तुम्हारे अहसान भी मुझपर बहुत है। तुम्हारे हाथ के गास-टुकडे भी मेरे बालको ने खा रखे है। अब तुमसे क्या छिपाऊँ अपना फजीता, दिदी! बस, यही समझ लो, कि वह तो मोतिमा थी, जो झेलती चली गई, दूसरी कोई पाथर की मूरत भी होती, तो पिसिया जाती! अब तो मोतिमा चुडैल का भेद खुल ही गया है, सो तुम भी सुन लो, दिदी, कि मै उस रात भी चोरी करने

ही वहाँ पहुँची थी।"

दुर्गावती बौराणी ने जरा-सी टेक-जैसी दे दी थी—"द, मोतिमा! जैसे घोर सकट के दिन तेरे सिर पर आए हुए है, ऐसे मे तो कोई दूसरी वाली औरत तो अलीत-पलीत काम भी कर डालती!"

"और मैं क्या सब करम चोखे ही कर रही हूँ, दिदी? एक सतोष मुझे यह था, कि चलो, स्साली जैसी भी पलीत जिन्दगानी गुजार रही हूँ, मगर नारी का सत् अभी तक नही खोया है। झब्बन बूचड और गुलाम अकबर पठान कहते थे, कि 'हमारे घराने मे आजा, बीबी! बुर्के मे नवाबजादियो की तरह घूमा करेगी। तेरे बेटे का खतमा भी करा देगे।' और भी कई किसम के लालच दे रहे थे, मगर मैने ऐसा उनको लताडा, कि बाद मे कभी आते-जाते मे दीठ-भेट हो भी गई, तो गुलाम अकबर भाई 'सलाम मोतिमा दिदी!' कहते हुए, चुपचाप एक तरफ खिसक जाता था। रुद्रदेव पण्डित कहा करते है, कि मुसलमान-पठानो की जात हराम होती है, ये लोग आर्य औरतों की इज्जत उतारने के मौके ढूँढते रहते है। मगर गुलाम अकबर पठान आडे बखत मे मेरे बाल-बच्चो की मदद करता रहा। आनन्दी और हरेन्दर को कहता रहा—'मोतिमा दिदी से हमारा सलाम बोलना और हमारा लायक कोई खिदमत बोलना।··' अब तो मेरा वह पठान भाई अपने मुलुक को चला गया है।" मोतिमा आवेशपूर्ण-स्वर मे कहती चली गई थी—"कल मुझे पता लगा, दिदी! कि हरामी-चोट्टे लोगों की कोई जात नही होती। वो तो सिर्फ कुजात होते है। कल बोरडिंग हौस मे चली गई थी। पूस की रात ठहरी, दिदी, ठंड-तुषार से मेरे हाड बजने लग गए ठहरे। टीन मे ठोकर लग गई, तो स्साले चौकीदार-चपरासी सब अपनी माँ के खसमो ने आकर घेर लिया। सब स्साले हिन्दुओ की ही औलाद तो थे? बोलते क्या है, दिदी, कि—पकडो, रे, आज चुडैल हाथ पड गई है। शास्त्रो मे कहा है, कि चुडैल का आनन्द लेने से अनेक तरह की सिद्धियाँ मिलती हैं!

द, स्सालो, जैसा आनन्द तुम लोगो ने अपनी इस दुखियारी-अभागिनी महतारी मोतिमा राँडी से लिया, ऐसा ही अपनी जनमानेवाली महतारी से

भी क्यो नही लेते हो, ससुरो ?···दिदी, किसी को 'भाई', किसी को 'दाज्यू' किसी को 'काकज्यू'[1] कहती जाती थी, हाथ जोडती जाती थी, कि मेरी चोर चमडी उतार लो, मगर मेरी इज्जत मत उतारो ! मगर, निठुर स्साले, मरी हुई भैस की तरह घसीटकर, बोरडिग हौस मे उठा ले गए, कि—ऐसी ही शरमदार थी ससुरी, तो आधी रात मे एकदम नगी यहाँ क्यो दौडी चली आई थी ? बैठे हुए थे तेरे खसम यहाँ ? अरे, स्सालो, खसम ही जो मेरा दया-ममता वाला होता, तो मुझे कल का दिन थोडे देखना पडता ? तुम अपनी माँ के· ”

दुर्गावती बौराणी समझ गई थी कि मोतिमा को पागलपन चढने लग गया है, सो वह अपनी पानी की गगरी उठाए चली गई थी—“मोतिमा, फिर कभी फुरसत से सुनूँगी तेरी बाते। घर मे बालक बिलखते होगे।”

मोतिमा, उसके जाते ही चिल्ला उठी थी—“द, वे दुर्गावती बौराणी! परमेश्वर करे, इस जनम मे तुझे कभी फुरसत नही मिले। अरे, बडे घरानो की सतवती राँडियो, मैं सब जानती हूँ तुम्हारे चरित्रर ! मोतिमा बकती है न ? तभी तुम लोग मोतिमा के कलेजे की हाय-पुकार नही सुनती हो ? मगर, जैसी मुझे भुगतनी पडी, ऐसी तेरे सिर पर पडती, तो आज उठकर पानी भरने कहाँ आती ? यह तो मोतिमा राँडी ही है, दिदी, कि रात के एक बजे से दोपहर के दस बजे तक उन चमार स्साले कुजातो का पाप भी झेलती रही और इस समय अपने बाल-बच्चो को गास-टुकडा खिलाने की फिकर से पानी भरने भी चली आई है ! अरे, दुनिया वालो ! स्सालो, मोतिमा तुम्हे बकतरुवा लगती है ? मगर जैसे-जैसे अत्याचार तुम लोगो ने इस मोतिमा राँडी पर किये है, ऐसी गत तुम्हारी महतारियो की भी हो जाती, तब तुम स्साले इस मोतिमा अभागिनी की व्यथा को समझते। लगते ऐसे-ऐसे लाल चिमटो के दाग तुम्हारी महतारियो की चूचियो मे भी, तब तुम निठुर लोग समझते, कि जिस अभागिनी मोतिमा राँडी को तुम

1. चाचा जी।

लोगो ने सता-सताकर पागल बना दिया है, उसके कलेजे की हालत क्या हो चुकी है।"

और मोतिमा ने अपनी कुर्ती फाड डाली थी।

पानी भरने के लिए आ रहे लोग भोटियाधारा के अगले मोड पर रुक गए थे, कि—अरे, आज फिर मोतिमा पगला गई है! ··

और भोटियाधारा के पास अपनी छातियाँ पीटती-पीटती मोतिमा पगली बिलखती रही थी—"परमेश्वर करे, स्सालो, तुम्हारी महतारियो की·· "

किसी ने आनन्दी को खबर कर दी थी और वह, दौडती-दौडती आकर, मोतिमा की विकराल देह से लिपट गई थी।·· और मोतिमा की जीभ जैसे एकाएक पथरा गई थी। · और जैसे एकाएक मोतिमा की आँखो की पुतलियाँ जलकर राख हो गई थी।···

तेरह

आज धर्मशाले के फर्श पर सिर पटकते-पटकते, न-जाने कितनी मर्म-भेदी सुधियाँ मोतिमा की पत्थरो के ढेर मे पडी कॉच की गोलियो-जैसी आँखो की पुतलियो को बेधती चली गई।

पिछले सप्ताह मोतिमा हवालात मे बन्द हो गई थी।

माघ की सक्राति का पर्व आ गया था। सारे घरो मे घुघुतिया त्यौहार का उल्लास छा गया था। छोटे-छोटे बच्चे मीठे घुघुत और नमकीन दाल-भात-बडा रखकर कौवे न्यौतने का पूर्वाभास करने लग गए थे—और मोतिमा के बालक, उसको टुकुर-टुकुर ताकते हुए, धर्मशाले की अधकार-भरी कोठरी मे दुबके पडे थे।

और मोतिमा बोर्डिंग हाउस की चोरी करने मे हुई दुर्गति को बिसर गई थी, और माह-सधि की रात को फिर चोरी करने निकल पडीथी—"हे परमेश्वर! सब लोगो के बाल-बच्चे घुघुतो की माला पहनेगे, दाल-भात आँगन मे रखकर कौवे न्यौतेगे—'काले कौवे, काले कौवे! दाल-भात-हलुवा पूरी खाले कौवे!' चिल्लाएँगे। मुझ अभागिनी रॉडी के घर मे दीपक जलाने को तेल नही, घुघुत कैसे उतारूँगी? जब से बोर्डिंग हौस मे फजीता करवाकर लौटी थी, तब से कही से कुछ नही मिला—मेरी दरिद्दर हालत कोई तुझसे छिपी हुई थोडी है, स्वामी! तू ही बता, कि मेरे छौने अधेरे कमरे मे पडे-पडे कैसे छलछल आँसू बिखरेगे, राम! अपनी दरिद्दर कोठरी के ऊपर से, उडते हुए कौवो को देखेगे मेरे अभागे छौने, तो मै कैसे अपने कलेजे के चिथडो को सँभालूँगी, राम!···मुझे निठुर से निठुर दण्ड दिला देना, स्वामी, मगर आज की रात मेरे अभागे छौनो के लिए कुछ जुटा ही देना।···"

मगर रुद्रपुर मे बरतनो की चोरी करते हुए मोतिमा को पकड लिया गया था और खूब पिटाई भी हुई थी। हवालात मे बन्द भी करवा दिया गया था। जिस घर मे चोरी करती पकडी गई थी मोतिमा, उसकी माल-

किन को हाथ जोडती-जोडती, बिलखती चली गई थी, कि—बौराणी ज्यू, चोर-चमारन हूँ, मेरी चमडी उतरवा लेना। भोटिया धरमशाले की काल-कोठरी मे मेरे दो अभागे छौने भूख से बिलख रहे होगे, माता! ···तुम बाल बच्चो वाली महतारी हो, बौराणी ज्यू! मेरे अभागे छौनो पर दया कर दोगी, तो और लोग तुम्हारे बालको पर दया-ममता करेगे। ··मेरे छौनो के लिए चार घुघुते और दाल-भात भिजवा देना, माता! ·"

मगर, बहूरानी जी ने यह कहते हुए मुँह फेर लिया था, कि—'और लोग तुम्हारे बाल-बच्चो पर दया, ममता करेगे,' कहती है चुरडी! हमारे बाल-बच्चे कोई तुझ-जैसी चोर रॉडियो की औलाद थोडे है?

और सक्राति का पर्व मोतिमा के लिए सिर्फ सताप लेकर ही आया था। हवालात मे बन्द मोतिमा पीडा से पथराई पडी रह गई थी, आँख मूँदे, कानो मे कपडा ठूँसे, कि कही हवालात की सलाखो से कोई घुघुत चोच मे दबाए उडता हुआ कौवा न दिखाई दे जाए। कि, कही किसी बालक की 'काले कौवे, काले कोवे!' पुकारने की आवाज कलेजे को झिझोड न दे।·· मगर, आँख-कान मूँद लेने पर व्यथा और ज्यादा घनी हो गई थी और मोतिमा को लगा था, कि आज सारे ससार-भर के कौवे और कौवे न्यौतने वाले बालक उसकी आत्मा के आस-पास एकत्र हो गए है। और मोतिमा ने इन कौवो, कौवे न्यौनने वाले बालको को भगाने के लिए, हवालात के फर्श पर अपना सिर फोडना शुरू कर दिया था—"अरे, कौवे हरामी स्सालो! यहाँ मोतिमा रॉडी का कलेजा उधेडने को क्यो आए हुए हो, रे निठुरो? अरे, तुम इतने लाखों-करोड़ो कौवे हो, रे स्सालो! · एक-एक घुघुत-पूरी भी तुम लोग अपनी चोचो से पकड-पकडकर भोटिया धरमशाले मे फेक आते, तो मेरे छौनो के सामने घुघुत-पूरियो का ये बडा-बडा ढेर· हा—हा—हा—हा—ये बडा, रे, बडा! ये बडा ढेर लग जाता।···"

अपनी बॉहो को फैलाकर मोतिमा अट्टहास कर उठी थी—"ठैरो, रे कौवे स्सालो! निकलने दो मुझको इस काल-कोठरी से बाहर। तुम. सालो मे से एक-एक की चोच पत्थर से नही कूटी, तो मेरा नाम भी मोतिमा

मस्तानी नही ! ठैरो, रे साले काले कौवो ! जो साला काला कौवा घुघुत चोच मे पकडकर मेरे दुखियारे छौनो के सामने से उडेगा, उसकी चोच मे तो मै मूत दूँगी, मूत ! · अरे, स्सालो, हरामी की औलादो ! तुम स्साले गले मे घुघुतो की माला लटकाए हुए मेरे छौनो का हिया क्यो कलपा रहे हो ? ठैरो, स्सालो ! मैंने भी तुम मे से एक-एक को खड्ड मे नही दबाया, तो मेरा नाम भी मोतिमा मस्तानी नही ! ··ठैरो,अपनी महतारियो के खसमो! ·· ”

बडी कठिनाई से मोतिमा को काबू मे किया गया था। जेलर साहब ने हटर मारने शुरू किए, तो फिर मोतिमा चिल्लाई—“मेरी चमडी उधेड लो, साहब, मगर मेरे छौनो को घुघुत-पूरियाँ पहुँचवा दो। मेरे अभागे छौने अपनी महतारी रॉडी का रास्ता देख रहे होगे। ”

और मोतिमा बिलख पडी थी।

और जेलर बाबू की आँखे भी भर आई थी।

और हटर रुक गया था।

और मोतिमा आज हवालात से छूटकर चली आई थी।

× × ×

हवालात से धरमशाले तक पहुँचने मे मोतिमा को कुछ सूझा भी नही था, कि किधर रास्ता है, किधर उसके पॉव पड रहे है। ‘और जिन छौनो की सूरत देखने के लिए मोतिमा बिलखती-बिलखती दौडी आई थी,वे दोनो धरमशाला छोडकर जा चुके थे।

दोनो छौने जा चुके थे, जिनके लिए मोतिमा मस्तानी बनी थी। जो मोतिमा किशोरावस्था मे ही देह पर से वस्त्र जरा खिसकते ही लाज से सेदुरा जाती थी, जिस मोतिमा की जीभ ऐसी-वैसी कोई बात कहने मे एकदम अट-पटा जाती थी—वही मोतिमा अपने छौनो के लिए मस्तानी बनी थी। लाज-शरम बिसारकर,चोर-चाडालिनी बनी थी। और जिन छौनो के लिए मोतिमा ऐसी बनी थी, उन्होने ही मोतिमा के साथ छल किया—बिलखती-बौराती मोतिमा की आँखो के आगे धरमशाले की गदी कोठरी रीती पडी थी।

और आज मोतिमा अपने ही दोनो छौनो को गलिया रही थी, कि—अरे, कमजात स्सालो ! इसी दिन के लिए जनमे थे तुम मेरी कोख से ? स्सालो, ऐसे ही एक दिन मेरे कलेजे मे लात मारकर निकल जाना था तुमने, तो अपने बाप रँडुवे के चूतड चीरके ही क्यो पैदा नही हुए ?"

× × ×

मोतिमा फर्श पर अपना सिर पटकती हुई विलाप करती जा रही थी, कि धरमशाले के परले कोने की कोठडी मे पडा रहने वाला भगतुवा कोढी उसके पास चला आया—"मोतिमा बैणा, तू तो सिर फोडती-फोडती यही पर मर जाएगी, मगर कोई भी निर्दयी तेरी मदद करने नही आएगा। मैं कैसे पकडूँ, लली, मेरे तो हाथ-पॉव ही गले हुए है। 'मगर, इतना सुन ले और अपना कोप कम कर, मोतिमा ! तेरे बालक तो 'महतारी-महतारी' ही बिलखते रहे पॉच दिनो तक, बावली ! मै कोढी ससुरा कैसे समझाता उन्हे? थोडा कोढी का जैसा धन बटोर रखा था, दे रहा था छौनो को, कि 'जाओ रे, अपने लिए घुघुतिया त्यौहार का सामान ले आओ।' मगर बालको ने मुझ कोढी की बात नही मानी, तेरे लिए ही रोते-चिल्लाते, इधर-उधर डोलते रहे। तेरे गिरफ्तार होने की बात सुन करके, दोनो बालक जेल की तरफ दौड रहे थे, कि बृजेन्दरसिह आकर के दोनो को पकडने लगा। आनन्दी तो भोटियाधारा की तरफ भाग गई, हाथ नही आई, मगर हरेन्दर को उसका बाप पकड ले गया। सुन रही है, या नही, मोतिमा ? गुसॉई साग वाला कह रहा था, कि आनन्दी को भोटियाधारा के पास बिलखते हुए नटवर सिह पुजारी ने देख लिया था। समझा-बुझाकर, अपने पास चितई उठा ले गया है।" यो अब सिर न फोड, लली, तेरे बालक तो तुझ पर बडी ममता रखते है।'''यह कोढी का धन तेरे छौने नही ले गए, मगर तू उठा ले जा, बैणा ! समझना तेरा बडा भाई कोढी हो गया था।"

मोतिमा तो जैसे सपने मे सारी बाते सुन रही थी। उठी और अपना सिर भगतुवा कोढी के पॉवो पर रखते हुए, बोली—"तू तो मेरा बाप है, भगतुवा ! तेरे शरीर मे कोढ फूटा है, मगर मन मे कोढ नही है। दुनिया

वालो की देह गोरी-चिट्टी होती है, मगर मन मे कोढ होता है। मुझे छिमा कर देना, मेरे बाप ! मैं तेरे दिए हुए पैसे अपने छौनो को इसलिए नही लेने देती थी, कि कही मेरे बालको को भी कोढ न हो जाए। "

कई बार भगतुवा के पाँवो पर सिर छुआकर, मोतिमा उठी और, उसी विकराल वेश मे, सीधे चितई की ओर जाने वाली सडक पर दौड पडी—"पहले अपनी आनन्दी को देख आती हूँ, फिर बिजुवा साले की लाश चीरने जाऊँगी। ठैर, साले बिजुवा ! तू क्या मेरे हरेन्दर को पकड ले गया है ? मैंने जो चितई से लौटते ही तेरी गुद्दी नही फोडी इसी दरानी से, तो मेरा नाम भी मोतिमा मस्तानी नही ! "

एक पड़ाव और

चौदह

कौशिला ने मोतिमा को विकराल वेश बनाए, हाहाकार करते आता देखा, तो विस्मय-कौतूहल से अपनी ही ठौर थिरा गई।

मोतिमा की कुर्ती भी फटी हुई थी और धोती-पेटीकोट भी। उसके घुटनो, कुहनियो और कपाल मे भोटिया धरमशाले की सीली हुई, लसलसी मिट्टी चिपकी हुई थी और कपाल मे लगी हुई मिट्टी के साथ भगतुवा कोढी की आधी फूँकी हुई बीडी का ठूँठ भी चिपका हुआ था। दाहिने हाथ मे उसने दराती पकड़ रखी थी और बाएँ हाथ से उसकी नोक को पकडे हुए, वह प्रचण्ड स्वर मे चीखती चली आ रही थी—"कहाँ है, रे कठुवा साले फोटूग्राफर! ठैर, साले! चितई से लौटते ही तेरा गला इसी दराती से रेतूँगी! ·· ऐसे-ऐसे-ऐसे "

कौशिला ने लिली को अपनी पीठ से चिपका लिया।

भय से कौशिला की सारी देह थरथरा उठी, कि—हे, राम! आज तो मोतिमा एकदम पगला गई है! न-जाने किसका गला रेतने को बौराई फिरती है अभागिनी।

कौशिला सोचने लगी, कि इसी मोतिमा के बारे मे पलटन बाजार की औरते कहा करती थी, कि अरे, वह मोतिमा अभागिनी तो बज्जर की छाती लेकर पैदा हुई है। जैसे-जैसे अत्याचारो के बीच मे वह दुखियारी अपनी देह तुडा-तुडाकर, अपने बच्चो के पालन-पोषण मे लगी हुई है, उसे देखते हुए तो महतारी का जनम धरना ही बेकार लगता है।·· अरें, जितना बडा सकट भोग रही है मोतिमा, ऐसी ही पत्थर-छाती भी दे रखी है उसे विधाता ने। कैसे-कैसे कठोर दुख भोगती है, मगर जीभ के टाँके नही उघडते उसके। जब मुँह खोलती है, मद्धिम जलते दीपक की जैसी उजास बिखेर देती है, कि 'कपाल मे जो लिखा लाई हूँ, वही माँगा हुआ भोग रही हूँ। रुदन-विलाप करने से कहाँ कम होगी मेरी विपदा!'

और वही जीभ मे टाँके लगाकर, घोर यातनाओ के बीच भी घने अध-कार मे टिमटिमाते दीपक की मद्धिम उजास-जैसी मुस्कान बिखेरने वाली मोतिमा आज ऐसा कालिका का जैसा विकराल भेष बनाए सामने से चली आ रही है !—कौशिला सोचने लगी—यह मोतिमा तो बृजेन्दरसिंह का घर छोडने के एक ही साल के बाद यो एकदम बौरा गई है। अरे, साक्षात् बज्जर की छाती तो मेरी है, मेरी ! डेढ साल से दर-बदर की ठोकरे खा रही हूँ, मगर इस मोतिमा की तरह चिलमनगी होकरके चोरियाँ करने घर से बाहर पाँव नही निकाला। हे राम, बिना वस्तुर की चिलमनगी देह लेकर मरदो के सामने कैसे चली जाती होगी यह बेशरम ! इस समय भी कैसा पलीत भेष बना रखा है ? न कुर्ती के बटनो की सुध है, न घुटनो से ऊपर तक उठी हुई धोती की। छिहाडी, दु ख-सकट तो लगे ही रहते है, झेलने ही पडते है, मगर इस तरह से एकदम बेशरम होकर चौडी सडको पर धिरकना औरत जात को शोभा नही देता ! ·

मोतिमा तब तक भोटियाधारा के एकदम निकट पहुँच चुकी थी। कौशिला की ओर एक बार एकदम रीती-रीती आँखो से देखने के बाद, मोतिमा भोटियाधारे की जल-धारा को अजलि मे बटोरते हुए बिलख पडी—"हे राम, तुम्हारे धारे का जल तो छल-छल बहता ही चला जा रहा है, मगर इस जल को भरने वाले हरेन्दर-आनन्दी के हाथ कहाँ है ? जनमी थी, तब से मेरी आँखो का जल छलछलाता ही चला आया है, राम ! मेरी छाती के बादल कब हटेंगे ?"

कौशिला सुन रही थी। मोतिमा का बिलखना और उसकी आँखो से छलछलाते आँसू देख रही थी—और उसे लग रहा था, कि इस मोतिमा की छाती मे भी ठीक उसी की छाती के जैसे सताप के बादल दबे हुए है, जो बेर-बेर आँखो की पुतलियो को ढाँप लिया करते है।···और कौशिला यह भले ही न जानती हो, कि हिमालय के ऊँचे शिखरो से टकराने के बाद बादलो से पानी चू ही जाता है—मगर, इतना तो वह भी जानती ही थी, कि ऊँची पुतलियो तक उठ आने के बाद छाती के बादलो का बिन बरसे ही छाती

की ओर लौटना कठिन है। ऊँची चढान उठ आने के बाद,ऊँचे टीले पर विश्राम करने वाला निचली घाटी की ओर उतरना नही चाहता। चढान मे घुटनो की नसे चढती है, उतार मे टूटती है। उठते समय छाती के बादल बिफर-बिफर कर पुतलियो पर छा जाते है, छितरा जाते है। चूल्हे की गीली लकड़ियो पर से ऊपर उठकर, छत पर चढा हुआ धुँआ फिर नीचे नही उतरता है।

कौशिला जानती है, कि छाती का सताप गीली लकडियो की तरह सुलगता रहता है। धुँआ ऊपर उठता है, नीचे नही लौटता। लकडियाँ सुलगती रहती है, धुँआ छोडती रहती है। छाती का सताप सुलगता रहता है, आँसुओ के बादल उठते रहते है। बरसते रहते है, छितराते रहते है।

कौशिला जानती है, कि मोतिमा कि छाती के बादल भी छितरा गए है—"मोतिमा दिदी, विलाप करती कहाँ को जा रही है तू ? कही चले गए है क्या तेरे हरेन्दर और आनन्दी ?"

मोतिमा ने सिर उठाकर, कौशिला की ओर देखा। बडी देर तक आँखो की पुतलियो को इधर-उधर घुमा-घुमाकर देखने के बाद, बोली—"हाँ, चले गए है बिरजेन्दर मस्ताने की महतारी को "

मोतिमा की रोष से थरथराती आँखे और भद्दी गाली सुनते ही, कौशिला थरथरा गई—'बापरे, यह तो साक्षात चुडैल है ससुरी ! एकदम पगला गई है।'

लिली को बडे जतन के साथ पीठ से चिपकाते हुए, कौशिला उठ खडी हुई—"अच्छा, मोतिमा दिदी, मै चलती हूँ। मुझे मदिर मे पहुँचने को देर हो रही है।"

मगर कौशिला थोडा आगे बढी ही थी, कि मोतिमा दौडती चली आई—"क्यो वे, तू रडी कौन है ? तू मेरी आनन्दी को इस तरह से चोरकर कहाँ को ले जा रही है ?"

कौशिला को अब याद आया, कि वह, चितई के गोल्ल मदिर मे घात घतियानें का सकल्प छोडकर, घर लौटने का निश्चय कर चुकी थी। मगर, अब स्थिति यह थी, कि जिस ओर से कौशिला घर की ओर लौटना चाहती

थी—उसी ओर से मोतिमा दराती लपलपाती हुई, उसकी ओर बढ रही थी।

'हे परमेश्वर, गोल्ल देवता हो !'—कौशिला ने, एकदम भय-विह्वल होकर, मन-ही-मन गोल्ल देवता को हाथ जोडे—'अब इस बियाबान-सुनसान जगल मे इस चुडैल पगली से मेरी रक्षा करने वाला कौन है। कही ऐसा तो नही, स्वामी, कि मैं जो घर से तुम्हारे मदिर मे घात डालने का सकल्प लेकर आई थी और लौटने लगी थी—उसी अपराध का दण्ड देने के लिए यह माया रच रखी हो तुमने ! पाप छिमा, अपराध छिमा करो, हो परमेश्वर मेरे गोल्ल देवता ! मुझ पर नही सही, मेरी इस लिलुली छोरी पर तो दया करो। ज्वर और भूख से वैसे ही लुतलुतान हो रही है लावारिस छोरी, यह मोतिमा राँडी तो इसे मार ही डालेगी।…मै अपने पाप की छिमा माँगती हूँ, स्वामी ! लो, अब घर की तरफ जो लौटे, वह कोढी हो जाए। सीध तुम्हारे ही देव-दरबार की तरफ को आती हूँ।…'

मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए, कौशिला सीधे चितई की ओर जाने वाली सडक की ओर दौडने लगी। प्रार्थना कर लेने के बाद भी, उसे भय से मुक्ति नही मिली थी और उसका हिया थर-थर-थर-थर काँप रहा था। पीठ पर लिली थी, हाथ मे पूजा की थाली, सो दौडने मे और भी बाधा पहुँच रही थी।

मोतिमा की भी फटी हुई धोती उसके पाँवो से उलझ रही थी, सो वह दौडते-दौडते एक बार एकदम मुँह के बल गिर पडी और दराती की मूठ मुँह मे लगने से एकदम खून छलछला आया। कौशिला ने पलट कर देखा, तो एक बार मन हुआ, कि 'न-जाने कितनी चोट लग गई है पगली को, जरा उठा ही दूँ सडक पर से।'…मगर फिर और तेजी से आगे को बढ गई, कि 'ठीक हुआ, जो राँडी का बकतरुवा मुँह फूट गया। मुझ देव-दरबार को पूजा का पवित्र थाल हाथ मे लेकर जाती हुई दुखियारी को पलीत आँखर सुना रही थी, मेरी लिलुली छोरी को मारने दौड रही थी—गोल्ल देवता ने ससुरी को इसी का दण्ड दिया है !'

इधर मोतिमा थोडी देर तक तो मूर्च्छित-सी पड़ी रही, मगर फिर प्रचण्ड चीत्कार करती हुई उठ खडी हुई और—फटी हुई धोती को, देह पर से उतारकर, सिर पर लपेट लेने के बाद—दूने वेग से कौशिला की ओर दौडी।

अगले मोड से ढलकती हुई कौशिला एकदम थम गई थी और लिली को पीठ पर, पूजा की थाली को हाथ मे सँभालना कठिन हो रहा था। सो इस आशा के भरोसे, कि अभी तो मोतिमा पगली अपनी ठौर से उठी भी नही होगी—कौशिला ने लिली को पीठ पर से उतार दिया और पूजा की थाली ठीक करने लगी। तेल बिखर गया था, चावल रोलीसे लथपथा गया था। कौशिला को एकदम व्यथा हो आई—"द, रॉडी! जैसे तूने मेरी पूजा की थाली का नाश कर दिया है, ऐसे ही गोल्ल देवता तुझ रॉडी का भी नाश करेंगे।"

जरा-सा सतोप यह सोचते हुए कर लिया कौशिला ने, कि—चलो, परमेश्वर के दिए हुए बीस-पच्चीस रुपये तो जेब मे पडे ही हुए है, चितई की किसी दुकान मे से और खरीद लेनी होगी पूजा की सामग्री। यह सतोप करने के बाद, कौशिला लिली को पीठ पर चढाना ही चाहती थी, कि मोतिमा ने उसको धक्का देकर, एक तरफ फेक दिया—"चल, रॉडी तू कौन है मेरी आनन्दी को लेकर भागने वाली? क्यो री, खसमखोर, इसी दिन के लिए पाला है मैंने अपना खून पिला-पिला के अपनी छौनी को?"

कौशिला तो धक्का खाते ही गिर पडी थी, मगर लिली को मोतिमा मार डालेगी, इस आशका से एकदम उठ खडी हुई। झटके के साथ उठने की चेष्टा मे, कमर मे एकदम तीखी चुसक-जैसी पडी और कौशिला वेदना से पथराकर, जमीन पर ही बैठ गई। उसकी आँखो से आँसू छलछला आए और वह टुकुर-टुकुर मोतिमा पगली को ताकती रह गई। कहना चाहती थी कि 'मोतिमा दिदी, मेरी लिली को न मार तू, मेरा गला भले ही काट ले।' मगर जीभ लटपटा गई।

कौशिला ने मोतिमा को एक झलक देखा—खून के छीटे कुर्ती और

पेटीकोट मे छितरे हुए थे और मुँह मिट्टी खून-थूक-गाज के छोल से लथपथा गया था। विकराल राक्षसी की तरह मोतिमा पगली ने लिली को अपनी छाती से चिपका लिया था और लिली भय से चिल्लाने, रोने लग गई थी। मन्वतर-जैसे कठिन काटने कुछेक क्षणो तक, कौशिला मोतिमा को देखती रह गई। मोतिमा ने लिली को छाती से चिपका लिया था और जार-जार रो रही थी—"मेरी छौनी, मेरी लाडिली, मेरी अनुवा न रो, बा, न रो। मैं कोई तुझे थोड़े ही मारूँगी, बा ? ओहो, ओहो, नही रोएगी, नही रोएगी, रे मेरी छौनी ! चुप बा, चुप बा !"

मोतिमा लिली को चूमती चली जा रही थी और लिली चुप हो गई थी, सिर्फ फटी-फटी-सी आँखो से कभी मोतिमा की, कभी अपनी माँ की ओर देख रही थी।

कौशिला एक हाथ से अपनी कमर मलाशती रही थी, ताकि उठ सके। तभी मोतिमा बोली—"उठ, ओ पगली, उठ ! कमर टूटी गाई की तरह पानी की कलशी-जैसी आँखे डबडबाते हुए मुझे क्यो ताक रही है ? खा जाएगी क्या तुझे मोतिमा ? एक तूने ही जनमाए है क्या बाल-बच्चे ? मैंने अपनी कोख नही चीरी है ? मुझे नही है छौनो की माया-ममता ?"

प्रश्नो की झडी-जैसी लगाते हुए, मोतिमा फिर फूट-फूटकर बिलखने लगी और उसने लिली को छाती से चिपका लिया, दोनो बाँहो से बाँधकर—"ठीक मेरी आनन्दी छोरी-जैसी मोहिल है यह छोरी। बार-तेर बरस पहले मेरी आनन्दी भी ठीक इतनी ही, ठीक ऐसी ही थी।..."

"मोतिमा दिदी, मेरी कमर मे चसक पड गई है।"—कौशिला, एक हाथ से आँसू पोछते हुए और एक हाथ से कमर मलाशते हुए बोली।

पन्द्रह

टिपुडी सेनीटोरियम का मोड काटते ही, कौशिला को चितई की वह ऊँची पहाडी दिखाई दे गई, जिस पर पर्वतिया गोल्ल कालू विष्ट का मन्दिर बना हुआ था और जिसकी पिथौरागढ की ओर पडने वाली ढलान पर ही, चितई पडाव बसा हुआ था और चितई के बहुश्रुत राजवंशी लोकदेवता गोल्ल का मन्दिर बना हुआ था।

कौशिला ने एकदम श्रद्धाभिभूत होकर, मन-ही-मन प्रणाम किया—जै हो, परमेश्वर मेरे गोल्ल देवता! दुख हर लेना, सुखियारी राह दे देना हो स्वामी! सब तुम्हारी ही माया है, जो मै एक वार पूजा का संकल्प खण्डित करने का दण्ड भोगने के बाद, अब तुम्हारे देव-दरबार मे पहुँचने ही वाली हूँ। मोतिमा जैसी पगली के मन मे जो लिली के लिए ममता उपज गई, वह भी तुम्हारी ही माया है हो, स्वामी! जै हो, जै हो, जैजैकार हो तुम्हारी।

मोतिमा से बोली—"मोतिमा दिदी, घाम ढलने लग गया है। घर लौटने तक तो मुझे रात हो जाएगी। एक भरोसा तेरा ही है, कि आनन्दी को लेकर तू भी मेरे ही साथ लौटेगी, तो सहारा हो जाएगा। होने को तो, तेरी तेल की मालिश के बाद, कमर की चसक कुछ ठीक हो गई है। मगर लम्बे पाँव रखने मे अब भी च्यास्स-च्यास्स हो रही है।"

"ला, इस छोरी को मेरी पीठ पर दे दे।" कहते हुए, मोतिमा ने लिली को अपनी पीठ पर ले लिया और तीव्र गति से चितई की ओर बढने लगी। कौशिला भी लम्बे पाँव धरने लगी। होने को तो मोतिमा का साथ हो गया था। साथ की जरूरत भी थी उसे, क्योकि मन्दिर मे पूजा करके लौटने तक साँझ का घिर आना निश्चित-सा था। और घर लौटने तक अँधेरा घेर लेगा। राह-चलते मुसाफिरो का साथ लौटते मे मिले, न मिले।

साथ के सहारे के लिए मोतिमा की उपयोगिता हो सकती थी और

जैसी आत्म-विभोर होकर वह लिली को प्यार करती रही थी, इससे यह भरोसा भी बँध गया था, कि मोतिमा चाहे पगली ही क्यो न हो, मगर लिली को दु ख नही पहुँचाएगी। मगर, जैसा विकराल वेष मोतिमा ने बना रखा था, उसके कारण राह-चलते मुसाफिर मुड-मुडकर उन दोनो की ओर देखते थे और सडक की तल्ली किनार की दुकानो मे बैठे हुए लोग उचक-उचककर।

कौशिला को बडी लाज-जैसी लग रही थी, कि इस अधनगी मोतिमा के साथ जाते हुए उसे किसी जान-पहचान के आदमी ने देख लिया, तो ?

"मोतिमा दिदी, धोती तूने सिर पर जो लपेट रखी है ? पहन लेती इसे, तो ठीक रहता। आम सडक पर चलना ठहरा। पेटीकोट भी तेरा कुछ उघडा ही हुआ-जैसा हे। आते-जाते लोग बुरी नजर से देखते है। जरा कपडा ठीक कर लेती तो अच्छा रहता।"—कौशिला ने साहस जुटाकर, आग्रह किया।

इतने मे ही घूर-घूरकर गुजरता हुआ, एक राह-चलता अपने साथी से बोला—"यार, जैसी गोरी-चिट्टी टॉगे है इस पगली की, जवानी मे कोई देखता तो ··"

"क्यो रे स्सालो ! कमजात मुसाफिरो ! क्यो रे, तुम अपनी महतारी के खसमो की मॉ-बहिनो की टॉगो को चील-कौवे लग गए है क्या, जो तुमको अपनी मोतिमा महतारी की नगी टॉगो की चमडी स्वादिष्ट लग रही है ?" मोतिमा, लिली को पीठ पर से उतारकर, नागिन-जैसी फुफकारती, दराती ताने हुए मुसाफिरो की ओर दौडी—"चीर दूँगी, स्सालो के मुँह-कान एक साथ मिला दूँगी और मस्तानी आँखे फोड दूँगी। ठैरो, स्सालो, अपनी महतारी के खसमो ! अब कहाँ को दौड रहे हो, रे ! लो, स्सालो, मोतिमा की बिना वस्तुर की टॉगो का मूत पी जाओ, मूत·· "

मोतिमा तो उधर मुसाफिरो के पीछे हाहाकार करती दौडी, इधर कौशिला ने जल्दी से लिली को पीठ पर चढा लिया—"चल, चेली ! इस मोतिमा पगली से तो मुक्ति मिली। हे राम ! कही और जो लौट आएगी

रॉडी फिर इधर को ही।"

लिली को पीठ पर लादे, कौशिला साथे चितई-मन्दिर की ओर दौड पडी।

इधर मोतिमा मुसाफिरो का पीछा करती, गालियाँ बकती, अधनगी सडक पर दौडती चली जा रही थी, कि सामने से दौड-दौडकर आता हुआ हरेन्दर आ गया, और 'माँ, माँ!' चिल्लाता हुआ, मोतिमा की टाँगो से चिपक गया।

हरेन्दर को देखते ही, मोतिमा ठिठकी खडी रह गई। उसकी आँखे अपार विस्मय से उघडी ही रह गई और उसने, दराती एक ओर फेककर, दोनो हाथो से हरेन्दर के सिर को दाब लिया—"हरेन्दर··"

"मै पलटन बाजार बाबू के पास से भागकर, नरैण तेवाडी देवाल के अपने धरमशाले मे गया था, माँ! भगत चाचा ने बतलाया, कि तेरी माँ आनन्दी को लेने चितई की तरफ दौड गई है। मैं तो एकदम तेज दौडता चला आया। अब तो मै एकदम थक गया हूँ, माँ!"—हरेन्दर बोला। उसकी आँखो से आँसू ढुलक रहे थे, मगर मुँह माँ मिलने की खुशी से अरुणा गया था।

"क्यो नही थकेगा तू, मेरा बेटा!" कहते हुए, मोतिमा ने उसकी पूरी देह को अपनी बाँहो मे बाँध लिया और पोछती-पलासती, आँसू बहाती रही। आँसू कुछ थमे, तो मोतिमा को सुधि आई, कि वह अधनगी बीच सडक मे खडी है और तमाशबीनो की भीड इधर-उधर जुट आई है। मगर मोतिमा चिल्लाई नही। हरेन्दर को हाथ के सहारे से जरा-सा हटाते हुए, उसने पेटीकोट के पल्ले नीचे कर लिए और सिर पर लपेटी हुई धोती खोल ली—"हरेन्दर, बेटे, तू जरा अगले मोड पर पहुँच जा। वहाँ तेरी कौशिला चाची खडी होगी। जा बेटे, जा। मै एक मिनट मे तेरे पास पहुँचती हूँ।"

हरेन्दर कौतूहल-भरी आँखो से उसे देखता, आगे बढ गया। मोड ढलक गया। मोतिमा एक मोटे पाकर-वृक्ष की आड मे चली गई। पेटीकोट के फटे हुऐ पल्लो को गाठ मारकर बाँध दिया। कुर्ती के बटन लगा लिए। धोती

पहन ली। और, एक बार जतन से सारी देह पर दीठ फिराकर, आगे बढ गई।

अगले मोड पर पहुँची, तो देखा—वहाँ अकेला हरेन्दर खडा था।

× × ×

कौशिला कालू विष्ट के मन्दिर तक पहुँच चुकी, तो उसने लिली को पीठ पर से उतारा। एक पैसा कालू विष्ट के छोटे-से मन्दिर मे चढा आई। लौटकर, लिली को पीठ पर चढाने ही लगी थी, कि मोतिमा की आवाज सुनाई पडी—"कौशिला बैणा, जरा ठैर तो जा वे! मोतिमा कोई तेरे पाँव तो नही बाँध लेगी?"

फिर साथ चलती बोली—"तू भी भाग आई, तो तेरा क्या दोष, बैणा! दुनिया ने जिस तरह मुझे पगला दिया है, मेरी छाया से तो सूरज का घाम भी दूर हटता चला जाता है, लली! मगर, जरा तू ही सोच, कि मोतिमा मस्तानी पागल क्यो न हो? देह तुडा-तुडाकर, नीच करम करके भी अपने छौनो को पाला-पोसा मैने। इन्ही की खातिर जेल का फाटक भी देख आई। मगर, घर लौटकर क्या देखती हूँ, कि मेरे छौने गायब है! कौशिला लली, तू भी बाल-बच्चो वाली महतारी है, बैणा! तू ही सोच, कि जो पछी दिन-भर अपने पोथिलो के लिए दाने बटोरने को लोगो के पत्थरो से अपने पख बचाने की फिकर न करे, उसे साँझ को घर लौटते ही घोसला उजाड मिले, तो वह अभागा पछी क्या करे?"

मोतिमा रोती चली गई—"मेरा तो चित्त ही एकदम बौरा गया था। मैं तो वही सिर पटकती-पटकती मर जाती, कि जिन छौनो के लिए मैने अपनी देह गलाई, उन्होने ही अपनी महतारी का मोह छोड दिया। परमेश्वर करे, भगतदा का कोढ दूर हो जाए उस बेचारे ने मुझे सिर फोड-फोडकर मरने से रोका। आनन्दी को लेकर लौटने वाली थी, कि चाहे खून ही क्यो न करना पडे किसी का, मगर इस हरेन्दर छोरे को जरूर ढूँढूँगी। मगर, गोल्ल देवता दाहिने हो गए है—मेरा हरेन्दर लौट आया हे।"

चलते-चलते, कौशिला सुनती रही, मोतिमा कहती रही—"भगतदा

ने अपने जोडे हुए पैसे मेरी धोती के आँचल मे बाँध दिए है, कौशी ! बावला कहता था—समझ लेना, तेरा अपना ही बडा भाई था कोई, जो भगतुवा कोढी बन गया। अठार-उनीस सालो से मरदो की दुनिया देखती चली आ रही हूँ मै। चार फल तीते, चार फल मीठ हरक वन मे होते है। मन-मन की माया-ममता का अन्तर है। सब गोल्ल देवता की लीला है,कौशी! कहाँ मै अपने हरेन्दर-आनन्दी को भगतदा की कोठरी के नजदीक भी नही जाने देती थी, कि कही कोढ सर जाएगा। और कहाँ उस कोढी-अपाहिज के मुख से क्या बोल निकले—मोतिमा, सिर मत फोड यो, लली ! जा,अपने छौनो को ढूँढ ला। परमेश्वर ने हाथ-पाँव से लाचार कर रखा है, तो भीख माँगने का रास्ता लगा हुआ है। चार पैसे जो भी जुटेगे, तेरे हाथ मे रख दूँगा। कहाँ मै उसकी दीठ-गध से घिनाती थी और कहाँ उसके पाँवो पर सिर रखने लगा, तो उसकी खूँट अँगुलियो से निकलता हुआ पीब मेरे कपाल मे लग गया, तो भी मेरे मन मे असतोष नही हुआ।"

कौशिला बोली—"तब तो तू अपनी आनन्दी को लौटाकर, उसी धरम-शाले मे लौट जाएगी, मोतिम दिदी ?"

"ना बैणा ! अब नही लौटूँगी वहाँ। बढते-बालको का साथ है। शोक तो जनम से ही लगा हुआ है, कही से रोग भी लग गया, तो ?"—मोतिमा बोली—"अब तो कही ऐसा ठौर खोजूँगी, जहाँ मेरे बालको पर बुरी दीठ डालने वाला न हो कोई। मगर इस पापी ससार मे कहाँ ऐसी सुखियारी ठौर मिलेगी मुझ सात जनमो की पापिणी को, कौशी ? एक चित्त तो अब यही होता है, कि जैसे-तैसे इस हरेन्दर छोरे को पलटन मे भर्ती करवा देती और आनन्दी छोरी का कोई बदोवस्त हो जाता, तो सिर मुँडाकर सन्यासिनी बन जाती। "

'सन्यासिनी बन जाती' कहते-कहते, फिर मोतिमा बिलखने लगी और हरेन्दर को छाती से लगाकर, सडक के किनारे बैठ गई।

कुछ सोचकर, कौशिला बोली—"मोतिम दिदी, साँझ पडने लग गई

है। कही ऐसा न हो, कि नटवरसिंह पुजारी अपनी दुकान बन्द करके चला जावे।"

नटवरसिह पुजारी की बात सुननी थी, कि मोतिमा बिफर उठी—"चला कैसे जाएगा, ससुरा? अपनी महतारी "

गाली बकते-बकते, मोतिमा ठिठक गई और, जल्दी-जल्दी आगे बढते हुए, बोली—"तू ठीक कह रही है, कौशी! आनन्दी छोरी की सूरत देखने का तो हिया कलप रहा है मेरा। चल, बैणा, जरा जल्दी-जल्दी चल तू।"

सोलह

नटवरसिह ने एक दीठ चाय के बरतन माँजती-धोती आनन्दी पर डाली और उसकी घनी मूँछो के कुछ बाल तो पहले ही फूले हुए थे, मगर तमाखू के धुँए के साथ ऊपर को उठती हुई उसकी मुस्कराहट भी मूँछो पर फैल गई, तो नटवरसिह को लगा—दाढी-मूँछ के सारे बाल सफेद हो गए है।

और उसे अपने पुनकोट गाँव की उदुली बुढिया के कहे हुए वचन याद हो आए—"ठैर, रे नटवरुवा साले! गोल्ल देवता के दरबार मे बकरियो के बच्चो के मुडे कटवा-कटवाकर क्या खाता है तू, तेरे लिए भी बालको के मुडो का सुख दुर्लभ ही हो जाएगा।"

• × × ×

उदुली बुढिया को अपनी वृद्धावस्था के दिन काटने के लिए एकमात्र सहारा बकरियाँ पालने का रह गया था। मनुष्य के बालको से भी ज्यादा लाड-प्यार से वह बकरियो के वच्चो को पालती थी, मगर जैसे ही उन्हे सीग फूटे नही, कि उसका सौतेला धरमसिह उन्हे एक-एक करके पूजा के लिए बेचता रहता था। पहाड के लोक-देवता भी पहाडियो की तरह ही मास-भक्षी है, सो उनके भक्त उन्हे बकरमुडो का भोग लगाते ही रहते है और छोटे-छोटे बकरो की तो और भी अधिक उपयोगिता मानी जाती है, कि—जितना फुलकतिया-कौला बकरा होगा, उतने ही देवता भी प्रसन्न होगे।

उदुली बुढिया बिलखती रह जाती थी। धरमसिह पूजा के लिए बकरियो के छौनो को बेचता ही रहता था—"तू साली बुढिया तो ऐसे बिलबिलाती रहती है, जैसे तूने ही जना हो इन्हे! अरे, टाँगे पसार के घर मे पडी रहती है ससुरी, तो हम तेरे लिए नून-तेल-चिथडे कहाँ से लावे? बकरियाँ बेचने से तो अपना नून-तेल-कपडा चलता है और धरम का धरम भी होता है। अपने यहाँ की वस्तु परमेश्वरो के मदिरो मे प्रसाद के रूप मे चढाई जाती है। अरी, हडकुली! जितने ज्यादा बकरी के बच्चे तेरे पाले हुए

देवताओ के मदिर मे कटेगे, उतना ही तेरा परलोक भी सुधरेगा। इस जनम मे मुसटडी ही रह गई है, अगले जनम मे ये सारे बकरी के बच्चे तेरी ही टॉगो से निकलेगे !"

और नटवरसिह चूकि गोल्ल देवता के दरबार का सॅझैती पुजारी था, सो जिस दिन उसकी पाली होती थी, उस दिन दरबार मे कटने वाले सारे बकरो के सिर और एक-एक खुट्टी उसके हिस्से मे ही आती थी। एकाध सिर-खुट्टी अपने और अपने परिवार के लिए रख कर, शेप नटवरसिह वेच देता था।

उदुली बुढिया, ऊँचे टीले पर बैठी, उस दिन नटवरसिह के घर की ओर खोखली आखो से ताकती ही रहती थी, जिस दिन उसका पाला हुआ कोई बकरी का वच्चा गोल्ल देवता की पूजा के लिए बिकता था। नटवरसिह के आँगन मे सिर भूनने की गध आती रहती थी और उदुली बुढिया एक पत्थर से अपना सिर पटपटाती रहती थी—"नटवरिया रे, जैसे मेरे छौनो की मुडियाँ भून रहा है तू, ऐसे ही कोई तेरे वालको की मुडियाँ भी भून देता, तो मुझे शान्ति मिलती।"

"और एक दिन तो उदुली बुढिया नटवरसिह के घर के आँगन मे आत्मघात करने ही पहुँच गई थी। उसका सबसे लाडला बकरा भॅगिरुवा गोल्ल देवता के दरबार मे कट गया था और उसका सिर नटवरसिह के घर पहुँच गया था। नटवरसिह की घरवाली भॅगिरुवा की मुडी सिगडी मे भून ही रही थी, कि दराती हाथ मे लेकर, उदुली बुढिया वही पहुँच गई थी। सिगडी मे उसने देखा था, कि भॅगिरुवा की कटी हुई भॅगरीली पूँछ भी उसके मुँह मे ही दबी हुई पडी थी[1]। एक ही क्षण मे उदुली बुढिया की आँखो मे वे सारी स्मृतियाँ उभर आई, जिनमे भॅगिरुवा की अगली टॉगे उठाकर, मिमियाते हुए पत्ते चरने से लेकर, पूँछ हिलाते हुए, बो-ओ-ओ करते हुए, सीग लडाने को दौडने तक की हरकते समाई हुई थी। और उदुली बुढिया

1. लोक-देवताओं को बकरा चढाते समय, बकरे की पूँछ काट के उसी के मुँह में दबा देते है।

की खोखली आँखे डबडबा गई थी—जिस मुखडी मे कौले पत्ते भरे रहते थे, भँगिरुवा के उस मुख मे उसी की भँगरीली पूँछ दबी हुई थी।

और उदुली बुढिया ने जोर से दराती अपनी गरदन पर मार ली थी—"ले, वे जसुली! ले, मेरा सिर भी मेरे भँगिरुवा के सिर के साथ ही भून कर खा लेना, तब तुम दोनो राक्षसो को तृप्ति मिलेगी! और मेरी पूँछ काटकर मेरे ही मुँह मे दबा देना—होगा कोई परमेश्वर नाम का साला, तो जैसे तेरे खसम नटवरिया निठुर ने मेरे भँगिरुवा की मुडी काटी है—ठीक ऐसे ही, तेरे गिरवरुवा की मुडी भी कोई जलती हुई चिता मे भूनेगा!"

उदुली बुढिया तो न-जाने कितनी चोटे मारती दराती की अपनी गर्दन पर, कि नटवरसिह ने उसे पकड लिया—"उदुली काकी, यो आत्म-घात न कर। मै क्या जानता था, कि तू भँगिरुवा को इतना प्यार करती है? नही लो, मैं नही लाता भँगिरुवा की मुडी घर। काकी, हाथ जोडता हूँ। कह तो, तेरे चरणो मे अपना सिर रख देता हूँ मै, मगर एक पूत से परिवार चल रहा है मेरा—गिरिवर को ऐसी कच्ची गाली न दे, काकी!"

"क्यो, रे नटवरिया? निठुरा, रे, तेरे लिए तो गिरवर को लगती गाली भी सहनी कठिन हो गई? और तूने मेरे भँगिरुवा की गर्दन काट दी, मेरे कलेजे पर कैसी बीती होगी, रे? मदिर मे बकरे तो तू ही काटता है राक्षस? मेरे भँगिरुवा की गर्दन मे खुखरी मारते समय तुझे इतनी भी दया नही आई, रे राक्षस, कि न-जाने उदुली अभागिनी ने कितनी बार तो इसी गर्दन को मलाश-मलाश कर चुपडा बनाया होगा?"—उदुली बुढिया जार-जार बिलख उठी थी—"मेरा छौना जनमा ही था, कि इसकी मयेडी को बाघ उठा ले गया। दूसरी बकरियो का दूध पिला-पिलाकर, जाने कैसे मैने पाला। रात को साथ सुलाती थी, तो मिमिया-मिमिया कर थन ढूँढने लगता था। अपनी छातियाँ चूसने को दे देती थी, तब जाके कही मेरी खोखली लोथ चूसते-चूसते ही सो जाता था। मेरी छातियो की छाल उतर जाती थी, मगर मुझ निस्सतानी का चित्त भी कैसा होगा, रे, जो मैने कभी एक आँसू भी नही गिराया, कि दूध पिलाते मे महतारी रोती है, तो बालको

के आँखो की ज्योत धुँधला जाती है। और एक तू है, रे पिचास, तूने मेरे भँगिरुवा का सिर काटते देर नही लगाई ?"

नटवरसिह की बाँहो मे जकडी हुई, उदुली बुढिया विलाप करती रही थी—"होगा मेरा भी सत्-धरम, पिलाई होगी मैने भी अपनी लोथ अपने छौने को। तो मेरी छाती से निकलने वाली हाय भी बेकार नही जाएगी। तू तो नर ही हुआ, रे नटवरिया! तेरे नारायण गोल्ल देवता का मन्दिर भी फूट जाएगा।'

उदुली बुढिया का सौतेला दौडा आया था और सोट मे सोटियाते-सोटियाते वापस ले जाने लगा था, कि नटवरसिह ने उसे, उसीका सोटा छीनकर सोटियाते हुए, अपने आँगन से खदेड दिया था—"कुछ नही, रे धरमिया साले! एक मनुष्य योनि मे तू कठुवा भी आ गया है। कौन नही जानता, रे समुरे, कि उदुली काकी को मारने को कोई हाथ भी दिखाता था, तो भँगिरुवा सीग उठा-उठाकर, उसे मारने को दौडता था। सौतेली महतारी है, तो क्या हुआ, रे? साले, जानवर की जितनी ममता भी नही तेरे हिये मे? अरे, कठुवे-कमजात! कौन नही जानता, कि जब तेरी महतारी मर गई थी, तो इसी उदुली काकी ने तुझे अपनी कोरी छातियाँ पिला-पिलाकर रातो को सुलाया था।···मगर, थू तेरी मनुष्य जाति के जानवर से भी बदतर साले के मुँह मे। साले, एक पशु की जितनी दया-ममता भी तुझ पाथर से कभी नही फूटी। "

धरमसिह अपने घर चला गया था।

नटवरसिह ने उदुली काकी के गले का घाव साफ किया था और अपने घर की बैठक मे ही बिस्तरा बिछा दिया था।

दिन बीतते चले गए। उदुली काकी की छाती की हाय ऐसी लगी, कि जसुली तो चौमसिया-बुखार से टूटती चली गई और गिरवरसिंह, छान छाने के लिए पत्थर निकालते हुए पत्थर खाणी मे ही दब गया।

लोग कहते रहे, कि—नटवरा, रे! यह उदुली बुढिया तूने घर मे क्या पाल रखी है, सब इसी अलच्छिनी के पाँवो का विष उतर रहा है। घुर-

वाली और पूत को खा ही गई है डायन, अब एक तेरी देह बाकी रह गई है। निकाल दे इस चुडैल को घर से।

मगर नटवरसिह ने किसी की बात नही सुनी। उदुली बुढिया घर की बैठक मे ही पडी रही और आँसू-भरी आँखो से नटवरसिह को घूरती रही। बोलती तो उसकी जसुली के मरने के दिन से ही बद हो गई थी। नटवरसिह समझ गया था, कि बुढिया इस सताप से ही घुल रही है, कि मेरी हाय लग गई और नटवरिया के घर का दूध-पूत उजड गया।

और, आते-आते, एक दिन ऐसा आया, कि सात दिन, सात रात बिना अन्न जल ग्रहण किए बिता दिए उदुली काकी ने, मगर प्राण नही छोड सकी। अथाह व्यथा-भरी आँखो से वह नटवरसिह को ताकती रहती और आँखो को बेर-बेर उसके चरणो की ओर घुमाती और फिर अपनी छाती की ओर घुमाती—और फिर अपने सिर को 'ना-ना' की मुद्रा मे हिलाने का प्रयत्न करती।

गाँव के बडे बूढो ने बताया—"उदुली के प्राण बकरियो मे ही बसते थे। जब तक इसके पास बकरी के छौने नही रखे जाएँगे, यह अपने प्राण छोडेगी नही। इसकी हसिनी अटक गई है।"

नटवरसिह दो बकरी के छौने खरीद लाया और उन्हे उदुली काकी के पास खडा करके, बोला—"उदुली काकी! तेरे पालने को बकरी के छौने ले आया हूँ। तुझे वचन देता हूँ, इन्हे किसी को नही काटने दूँगा।"

सब लोगो की यही आशा थी, कि अब उदुली बुढिया अपने अटके हुए प्राण छोड देगी। उदुली बुढिया ने थोडे-से आँसू ढुलका दिये, थोडी देर पलके मूँदी और साधो पधान बोले—"बस्स, हसिनी उड चुकी है। मैने तो पहले ही कहा था, कि बुढिया की माया-तृष्णा के जाल मे उलझी हुई है इसकी हसिनी। अब मिट्टी ठिकाने लगाने का बदोबस्त करो।"

मगर, नटवरसिह के नाडी पकडते ही, उदुली काकी ने फिर अपनी आँखे खोल दी, जैसे एक बार चारा निगल लेने के बाद, किसी घायल पछी ने फिर अपनी चोच उघाड दी हो।

दो दिन और बीते, मगर उदुली काकी की हँसिनी अपनी ही ठौर थिरी रह गई। नटवरसिंह की आत्मा अपने ही परिवार के उजडे-जाने से दुखी थी, ऊपर से उदुली काकी की खोखली आँखो मे घूमते हुए संकेत उसे तीखे शूलों की तरह बेधते चले जा रहे थे।

एक दिन दो-चार जन बैठे ही हुए थे बैठक मे, कि एकाएक नटवरसिंह उदुली काकी के उसके पाँवो, अपनी छाती की ओर घूमने के बाद 'ना-ना' मे बदलने वाले संकेतो का अर्थ समझ गया। उदुली काकी के पास जाकर, बोला—"उदुली काकी, मेरा संताप मत कर। इस संसार मे किसी की गाली से किसी के प्राण नही जाते है। सब अपनी माँगी हुई उमर को भोग-भुगत कर ही मुक्ति पाते है। जसुली और गिरवर जितने दिनो के लिए मेरे साथ रहने को आए थे, उतने दिन रहकर चले गए। तेरी गाली से ही जो लोग मरते होते, तो और कोई दूसरा संसार मे मरता ही नही। एक बहाना जैसा है, कि तेरी गाली लगी। मगर संसार मे यह जो करोडो प्राणी आए है, सब एक दिन यहाँ से जाने के लिए ही आए है। मै तुझे एक ब्रह्मपुराण की कथा सुनाता हूँ। एक ब्रह्मा के भगत ने उनकी घनघोर तपस्या की। वरदान माँगते समय बोला, कि 'मेरी उमर एक हजार बरस बढा दीजिए।' ब्रह्मा जी बोले, कि 'इस जनम मे तो जितनी उमर तुम्हारी पहले ही लिख दी गई है, उससे ज्यादा नही बढ सकती।' तब भगत कुढकर बोला, कि 'अच्छा, महा-राज, एक बरस घटा तो दीजिए।' मगर विधाता हँसते हुए बोले, कि 'भगत, जितनी तुम्हारी उमर लिख दी गई है, उसे एक भी पल घटाना-बढाना मेरे वश मे नही है।' तब तू क्यो किसी तरह का संताप करती है काकी? और जहाँ तक मेरा सवाल है, मुझे तुझसे कोई वैर नही है, रोष-तोष नही है। नारायण परमेश्वर की लीला है, उसका दोष नर-नारियो पर थोपने से कोई लाभ नही है। फिर भी, तू चाहती ही है, तो मै अपनी तरफ से तेरे अनजाने अपराध को माफ करता हूँ।···और तेरी सेवा-टहल मे जो कसर मुझसे रह गई हो, उसके लिए तू मुझे माफ कर देना। और जहाँ तक··"

लेना। पलट गई कभी कपाल-रेखा, तो देखी जाएगी। नहीं लौटे मेरे पाँव फिर कभी इधर, तो सब रूखा-सूखा तुम्हारा ही है।"

चितई लौटकर, नटवरसिंह सीधे गोल्ल देवता के दरबार मे पहुँचा। मन्दिर-कपाट की देली पर मत्था टेककर, बोला—"ले, चार सच्चे मोतियो का नजराना स्वीकार कर ले, स्वामी! बकरो के मुड तो हजारो चढाए होगे तेरे दरबार मे, आज चार पश्चाताप के आँसुओ का प्रसाद चढा रहा हूँ, स्वामी! मन का शोक-सताप और पातक हर लेना, चित्त को शात, बुद्धि को निर्मल कर देना। जो-कुछ मुझ पर बीतनी थी बीत गई है और मैं सत तुलसीदास जी के इस दोहे का अर्थ समझ गया हू, कि 'तुलसी हाय गरीब की कबहुँ न खाली जाय।' भँगरिवा की गरदन मे उदुली काकी की आत्मा का वास था। मैंने खुखरी मे उसकी आत्मा का रुड-मुड अलग-अलग कर दिया। समझना यही था, कि तेरे चरणो मे बलि-मुड चढाना एक बहुत बडा पुण्य और सिद्धि का काम है। मगर, तेरे दरबार के इसाफ ने आखिर यही सिद्ध कर दिया, कि नटवरिया रे, किसी-किसी पशु मे भी किसी नर-नारी की दुखियारी आत्मा का वास रहता है और दुखियारी आत्मा का गला खुखरी से काटना—हे, राम-राम! हे, शिव-शिव!"

अपने दोनो कान पकडकर, दण्डवत करते हुए, नटवरसिंह अपनी सतप्त आत्मा का शोक देवता के चरणो मे उतारता रहा था। सजोग से उस दिन पुजारी-पाली भी उसी की थी और कई भगत छोटे-छोटे बकरे लेकर, गोल्ल देवता को प्रसन्न करने के लिए देव-दरबार की सेवा मे आ गए थे।

सबसे पहले एक सूबेदार साहब आए थे, अपनी पत्नी और लडको को लेकर। उनके गाँव के दो-चार जन और भी थे उनके साथ। गोल्ल देवता के दरबार मे दण्डवत करते हुए, सूबेदार साहब बोले थे—"परमेश्वर गोल्ल देवता! जैसा मैंने सकल्प बाँध रखा था, ऐसा ही तूने सकसेसफुलनेस यानी कि सिद्धि भी मुझे दे दी है। एण्ड आय एम भेरी ग्रैटफुल टु यू। थैंक यू भेरी मच। ऐज आई वाज प्रोमिश्ड टु यूवर। सो दैट आय ऐम औलरेडी विथ टू गोट्स ऐट यूवर टिम्पल। प्लीज ऐक्सप्ट दिस अवर भेरी लिट्टिल

पिरजेन्टेशन्स। एण्ड एज यू मेड मी फुल रैंक सूबेदार विथ इन दैट टायम ग्रौफ थरटीन एयर्स ग्रौनली। भेरी सून एट दी फ्यूचर सो दैट प्लीज, मेड मी सक्सेसफुली फौर मेजर जनरल। देन, ग्राय प्रोमिश्ड यू हियर, एट दी सेम दैट पीरियड, आय विल पिरजेन्टेड टू वार्ड यूवर टिम्पल—विद फोर फैट गोट्स! थैंक यू, माई लवली गौड! ग्रो के!..."

'रॉयल लैंग्वेज' मे गोल्ल देवता की प्रार्थना करने के बाद, सूबेदार साहब ने गर्व-भरी ग्रॉखो से ग्रपनी पत्नी ग्रौर ग्रपने गॉव वालो की ग्रोर देखा था। सबकी ग्रॉखो मे ग्रपने ग्रग्रेजी-ज्ञान के प्रति ग्रगाध ग्राश्चर्य ग्रोर श्रद्धा का भाव देखकर, उनका मन सुख से गद्गदा गया था।

मगर, जब दोनो फुलकतिये बकरे पुजारी नटवरसिह की ग्रोर बढाते हुए, सूबेदार साहब ने ग्राग्रह किया—'प्लीज, डियर पादरी साहब! किल दीज गोट्स ग्रौलरेडी टूवार्ड माई गोल्ल देवता। ग्रोह, तुम शायद, ग्रग्रेजी लैंग्वेज अण्डरस्टैण्ड नहा करेगा। सो, इन बोकियो की बलि देने की तैयारी कर दो, जी!"

"सूबेदार साहब, गुस्ताखी मेरी माफ होवे।"—नटवरसिह ने हाथ जोड दिए थे—"मगर जहॉ तक मैं समझता हूँ, कि गोल्ल देवता कोई रुड-मुडो के भूखे नही है। देवता है, देवता की सेवा ग्रात्मा के ग्रर्पण से ही सिद्ध हो सकती है। फूल-बताशे-नारियलो की सेवा भी नर-नारियो के ग्रपने बाहरी सतोष के लिए है। जहॉ तक मै समझता हूँ, कि गोल्ल देवता ने साक्षात् ग्रवतार लेकर कभी किसी से नही कहा होगा, कि मुझे बकरियो की बलि चढाग्रो।"

"इस्टौप, प्लीज! कहा कैसे नही? इसी लास्ट सण्डे को जब हमने गोल्ल देवता की ग्रवतार सिरामनी इनभाइट की थी, तो गोल्ल देवता के डगरिया हमारे सामने ही खडे देबसिह जी ने हमे ग्रौर्डर प्लेस किया था, कि इस टूडे मगलवार को हम दोनो बकरे इनके—यानी कि ग्राय मीन टू से, गोल्ल देवता के—दरबार मे बलि चढा देवे! इनके शरीर मे जो गोल्ल देवता का ग्रवतार होता है, सो क्या कोई जोक है?"

"सूबेदार साहब, नर की देह मे अक्सर नारायण के मिथ्या रूपो मे उसी के मन के सस्कारो का वास हो जाता है । नर को नारायण का जैसा रूप अपने मतलबो की सिद्धि के लिए भला लगता है, वैसे ही सिद्धिकर्त्ता नारायण की मूर्त्ति की वह मन्दिर मे स्थापना कर देता है । मै भी नर हूँ, नारायण का भक्त हूँ । मगर, जहाँ तक मेरा विचार है, कि नारायणो के लिए उनकी हरेक सृष्टि बराबर है । मेरे विचार से, गोल्ल देवता के लिए इन बकरो मे और आप लोगो मे कोई अन्तर नही है । अन्तर हम लोगो की दृष्टि मे है । पशु है, वह लाचार है, जैसे हमारी उदुली काकी का भँगिरुवा लाचार था । और हम लोगो के पास खुखरी होती है, सो हम अपने लिए शिकार का स्वाद पाने को इन पशुओ का गला काट देते है ।' 'और अगर इन पशुओ के पास खुखरी होती और हम इनके वश मे होते, तो ये हमारे मुण्डो को काटकर गोल्ल देवता के दरबार मे चढा देते और यही मान लेते, कि ईश्वर की सेवा सिद्ध कर ली हे । माफ करना, सूबेदार साहब ! आप देश-परदेश घूमे हुए मुझसे ज्ञानी आदमी है । मै एक गाँव का गँवाडी मद-बुद्धिवाला मामूली आदमी हूँ । मगर जहाँ तक मै समझता हूँ, कि नारायण का हिया बडा दयावान होता है । उसके लिए उसकी सारी सृष्टि एक ही है । नर लोग अपने स्वाद-सतोष के लिए बकरे काटते है, उनका शिकार खाते है । कहाँ तक ऐसा वलिदान का काम जो हे, वह ठीक है—मै कुछ ठीक-ठीक नही कह सकता, मगर देवता के नाम पर बेबस-लाचार पशुओ की हत्या करना—मै तो जहाँ तक समझता हूँ—यह उस देवता को अपने मन के पापो के कारण राक्षस समझने के बराबर है ।'''अब आगे आपकी इच्छा रह गई, मगर मै अपने हाथो से बलि नही दे सकता । मै तो अपनी दुकान की तरफ को लौट रहा हूँ ।' 'एक बात कह सकता हूँ । जहाँ तक फौज मे तरक्की मिलने का सवाल है, वह बकरो की बलि देने से नहीं मिल सकती । नही तो हर सिपाही दस-बीस बकरो की देवता के मन्दिर मे बलि देकर, सूबेदार क्या, मेजर जनरल ही बन जाता ! अगर बकरो के मुण्ड चढाने से ही देवता प्रसन्न होते, तो हजारो मुण्ड चढानेवाले इस नटवरसिंह पुजारी

को निर्वंश नही होना पडता, सूबेदार साहब ! आप जो सिपाही से सूबेदार बने है, तो आपने फौज मे अपनी ड्यूटी पूरी की होगी। मेहनत की होगी और वीरता के काम किए होगे। और आगे भी आपकी जो तरक्की होगी, वह आपकी वीरता के कारण ही हो सकेगी, मेरा तो कुछ ऐसा ही विचार है। वैसे मै एक मामूली-सा गँवाडी आदमी हूँ। परमेश्वर की सृष्टि का ससार बहुत बडा और विचित्र है। मेरी कोई पहुँच वहाँ तक नही है। मैं तो एक पशु को पूत की तरह पालने-पोसनेवाली नारायणी उदुली काकी की ममता-भरी हाय का बैरागी बनाया हुआ अधम नर हूँ। दया धरम का मूल है—ऐसा सत तुलसीदास जी ने कहा है। मेरे लिए अब हर बकरे की देह मे उदुली काकी की ममता का वास है। मै तो आज आखिरी दिन अपने सच्चे मन की पूजा गोल्ल देवता के दरबार मे चढाकर जा रहा हूँ। बाकी जो दिन काटने रह गए है, अपने पापो का प्रायश्चित करते हुए काट देने की इच्छा है। अच्छा, सूबेदार साहब ! राम-राम।"

·· और नटवरसिह जैसे ही जाने लगा था, सूबेदार साहब ने उसका हाथ पकड लिया था—"ओ, माय गौड ! सच ए दिस ग्रेट पुजारी परसन? एण्ड इन सच ए ऑर्डिनरी भिलेज एण्ड टिम्पल ? वण्डरफुली ग्रेट ! ··ओ, आय एम सौरी ! माफ करना, पुजारी साहब ! आपका सोल-रीडिग एण्ड हार्ट-टचिग नौलेज बहुत डीप है। हम आपको प्रोमिश्ड करता हूँ, कि ये बकरी का बच्चा लोग को यहाँ पर नहो काटूँगा।"

फिर सूबेदार साहब ने बारी-बारी से पहले अपने लडको और बकरो के सिरो पर हाथ रखा था—"आप ठीक कहता है, कि जैसा ये मेरे बच्चे लोग है. ऐसा ही, ये बकरे परमेश्वर के बच्चे लोग है।"

और सूबेदारनी की आँखो से आँसू छलछला आए थे।

और 'डौन्ट वीप, डियर !' कहते हुए, खुद सूबेदार साहब रो पडे थे।

और नटवरसिह के आँसू उसकी सूरज-किरनो-जैसी धुपैली-मूँछो मे अटक गए थे।

× × ×

धीरे-धीरे नटवरसिह बैरागी और देवद्रोही घोषित हो गया था। सभी यही कहते थे कि गोल्ल देवता को बलिदान मे चढाए जाने वाले मुण्डो और खुट्टियो को नटवरसिह पहले बेच दिया करता था, इसीलिए गोल्ल देवता उस पर कुपित हो गए और उसका वश नाश कर दिया।

गोल्ल देवता के मन्दिर मे बकरो की बलि-सख्या मे कोई कमी नही आई थी। नटवरसिह पुजारी-वृत्ति से निवृत्त हो चुका था। तो सभैत पुजारियो को इससे आर्थिक लाभ ही हुआ था। नटवरसिह, कभी-कभार, अपनी दुकान के चबूतरे पर बैठे मुसाफिरो और गोल्ल देवता के मन्दिर मे बलिदान देने के लिए आए हुए भक्तो से चर्चा करता ही रहता था, कि नारायण के नाम पर पशु-बलि देना, उस नारायण को ही नर-राक्षस सिद्ध करना है। मगर सुनने वाले एक कान से सुनकर, दूसरे कान से निकालकर, नटवरसिह के सारे उपदेशो को उसीके चौतरे पर छोड जाते थे।

नटवरसिह ने प्राण रखने का एक सहारा चाय-पानी का धधा बना रखा था। एक तो उसके देवद्रोही उपदेशो से लोग घिना गए थे, दूसरे नटवर-सिह की देह मे चुस्ती नही रह गई थी। चाय के बर्तन धोने-माँजने और ग्राहको को सतुष्ट कर सकने के लिए स्फूर्ति चाहिए थी, रह नही गई थी। उदुली काकी की हसिनी को तृप्त करने के लिए खरीदे हुए दोनो बकरे भी दिन-पर-दिन बढते जा रहे थे और उनको चराने की समस्या अलग से थी।

बकरो की जात ठहरी। जरा खुले और दीठ से चूके नही, कि किसी-न-किसी के खेत मे मुँह मारने पहुँच जाते थे। नटवरसिह को गालियाँ पडती थी और बकरो को पत्थर झेलने पडते थे—"अरे, साले इन बकरो के पालने-पोसने वाले का नाश हो जावे! नट्वे की औलादो-जैसे दिन-पर-दिन मुटाते जा रहे है और हमारी खेती चौपट कर रहे हैं।"

एक दिन तो भँगिरुवा की टाँग ही किसी ने लँगडी बना दी थी और, तेल-हल्दी लगाकर मालिश करते हुए, नटवरसिह रो पडा था—"हे, पर-मेश्वर! एक माया-जाल तो तूने खुद ही काट दिया था, अब यह दूसरा माया-जाल सिर पर पडा हुआ है।"

इसी बीच नटवरसिह ने, नारायण तिवाडी देवाल आते-जाते मे, मोतिमा के बालको को भी देखा था और गुसाई साग वाले से उनका इतिहास भी जाना था। नटवरसिह ने गुसाईसिह से कहा भी था, कि यदि मोतिमा साथ लगा देती, तो आनन्दी को या हरेन्दर, या दोनो को उठा ले जाता। दो पशु घर मे पहले से पनप रहे है, दो बालको का पालन-पोषण और हो जाएगा। ·· मगर, गुसाँईसिह ने कह दिया था, कि 'यार, मुझसे कह दिया है, किसी दूसरे से मत कहना। कही मोतिमा के कानो तक बात पहुँच गई, तो तेरा बीच बाजार मे फजीता कर देगी।'

× × ×

और आज उसी आनन्दी को आँखो के सामने हाथ-पाँव चलाती पाकर, नटवरसिह की आँखो मे सारा अतीत-वर्त्तमान धाम-बरखा के सगम की तरह उभर आया था। पिछली बार नारायण तेवाडी देवाल जाने पर उसने आनन्दी को माँ-माँ बिलखती, डोलती पाया था। और, बडे नेह के साथ समझा-बुझाकर, अपने साथ ले आया था, कि 'अरी, लली, तेरे रोने-बिलखने से थोडे ही छूट आएगी जेल से तेरी महतारी? चल, मेरे साथ चल। मै उसकी जमानत का बदोबस्त कर दूँगा। बदोबस्त क्या कर दूँगा, खुद अभी भी जमीन-जायदाद का मालिक हूँ। खुद ही जमानत दे दूँगा।'

गुसाँई सागवाले ने आनन्दी को तो समझा-बुझा दिया था, कि 'चेली, नटवरदा-जैसा दयावान आदमी और तुझे कोई नही मिलेगा। इनके साथ रहेगी, तो तेरा भविष्य सुधर जाएगा।' ·मगर नटवरसिह से कह दिया था— "नटवरदा, यार, अगर तू इस आनन्दी को अपने पास रखना चाहता है, तो इसकी माँ की जमानत मत कर। उसे तू जमानत पर छुडा लाया, तो वह पहले तेरा ही फजीता करेगी और अपनी बेटी को उठा ले जाएगी। मैने सुना है, कि मोतिमा जेल मे जाते ही पगला गई है और अब उसे बरेली के पागल-खाने मे भेजने का वन्दोबस्त किया जा रहा है। हरेन्दर को तो उसका बाप उठा ले गया है। यह छोरी रह गई है, इसका जीवन भ्रष्ट हो जाएगा। यह बस्ती तो साली हुड़कियो, बूचडो और कलालो की है। किसी दुष्ट के हाथ

पड गई, तो फिर कभी इसकी जिदगी नही सुधर सकेगी। तू इसे ले जा और बहला-फुसला के रख। धीरे-धीरे खुद ही समझ जाएगी। सयानी हो जाएगी, तो किसी अच्छी ठौर निबटा देना। यह एक बहुत बडी तीर्थ-यात्रा तेरे हाथो से हो जाएगी।"

और आनन्दी को नटवरसिह ले आया था, कि 'चेली, जेलर साहब ने कहा है, कि एक महीने बाद तेरी महतारी को छोड देगे। मैने मोतिमा के पास जवाब भेज दिया हे, कि 'तेरी आनन्दी मेरे पास रहेगी। जब आएगी, तो बुला ले जाना।'

आनन्दी आई थी। इतना दुलार मिला था उसे, कि वह सुख पाने लगी थी। भँगिरुवा-चनुवा बकरे मिमियाते-मिमियाते उसके हाथ से रोटी छीनने को आते थे और सकेत करते ही, टाँगे उठा-उठाकर, ठेप-ठेप लडने लगते थे, तो उसे बडा आनन्द मिलता था। सोचती थी, कि माँ भी यही आ जाती यही रह जाती, तो कैसा सुख मिलता। हरेन्दर भी यही आ जाता।

मगर नटवरसिह दिन-रात यही प्रार्थना करता रहता था, कि—"हे राम, एक न कटता-बखत काटने के लिए यह पली-पलाई छोरी तूने दे दी है, तो अब इसका हिया यही रमा देना। मोतिमा यहाँ वापस न लौटे, ऐसी कृपा कर देना, स्वामी!"

ऐसी प्रार्थना करते समय, नटवरसिह को एक यह शूल जरूर चुभता था, कि—नटवरिया रे, अपने स्वारथ की सिद्धि के लिए तू भी मोतिमा का अनिष्ट सोच रहा है। यह तेरा अन्याय ही तो है?

मगर, नटवरसिह मोतिमा के लौट आने और आनन्दी को छीन ले जाने की कल्पना से ही सिहर उठता था और, मोतिमा के वापस न लौटने की कामना करते हुए, हाथ जोड देता था—"स्वामी, तुम्हारी सृष्टि का ससार बहुत बडा है। मैं एक मामूली-सा मदबुद्धि नर हूँ, तुम सर्वशक्तिमान नारायण हो। मेरे पाप क्षमा कर देना, स्वामी!"

आनन्दी धीरे-धीरे ऐसे हाथ-पाँव सारने लग गई थी, कि बकरे भी गालियाँ नही बटोर रहे थे और दुकान भी अच्छी-भली चल रही थी। मुम-

फिरो को सुविधा देने मे आनन्दी कच्चे सोटे-जैसी लचकती फिरती थी। नीची दीठ करके, मीठे वचन बोलती थी। और, अचानक यह चलती-फिरती लक्ष्मी पाकर, नटवरसिह की देह लगने लग गई थी। कहाँ नटवर-सिंह को बकरो को बटोरने दौडना पडता था और गिलास-बर्तन माँजने पडते थे और कहाँ गद्दी पर बैठा-बैठा हुक्का बदलने के लिए भी आनन्दी को ही पुकारता था—"अनू, जरा हुक्के का तमाखू तो बदल दे, चेली!"

रात को आनन्दी उसकी देह दबाने लगती थी, तो नटवरसिह रोने लग जाता था—"अरे, तुझ छोरी ने आकर तो मेरी देह अलसा दी है। इतना सुख दे रही है तू छोरी, कही तू बिछुड गई · हे, राम! कैसे अलच्छिन वचन मेरे मन मे आते है। उदुली काकी, जाते-जाते तू मुझे आशीर्वाद दे गई होगी नारायणी, तभी तो मुझ पातकी के घर मे यह लक्ष्मी आई हुई है।"

× × ×

आनन्दी बर्तन माँज-धोकर निबट चुकी तो, तो नटवरसिंह ने अपनी मूँछो पर अटके हुए आँसुओ को पोछ लिया—"अनू, जरा हुक्के का तमाखू तो बदल दे, चेली!"

आनन्दी आई, हुक्का उठा ले गई। तमाखू बदलकर, हुक्का चिलम पर रखा ही था, कि सडक पर से मोतिमा चिल्लाई—"नटवरसिंह पुजारी साला यही रहता है क्या?"

नटवरसिह ने ऊपर को देखा, तो उसे ऐसा लगा, कि आनन्दी ने तमाखू का जो हुक्का उसकी चिलम मे चढाया था, उसे मोतिमा ने उतारकर, फोड दिया है।

सत्रह

नटवरसिह अवाक् मोतिमा की ओर देखता और चिलम की नली होठो से टिकाए रह गया, तो मोतिमा भी कुछ हिचकिचा-सी गई, कि—छि, छी, दीठ-भेट होते ही एकदम गाली ही निकल पडी मुँह से। औरत जात की वाणी को ऐसा ओछापन शोभता नही।

इतने मे आनन्दी आकर, मोतिमा की कमर से लग गई और बिलखने लग गई तो, मोतिमा को थोडी देर तक ऐसा लगा, जैसे आनन्दी और हरेन्दर के रूप मे, उसकी कमर के दोनो ओर, दो पख फूट आए हो और वह एकदम ऊँचे आकाश मे बौट्या पक्षी[1] की तरह थिरा गई है। उसे कुछ सूझ ही नही रहा था, कि वह कैसे आनन्दी को बिलखने से रोके।

नटवरसिह से बोली—"क्यो हो, दुकानदार ज्यू, नटवरसिह पुजारी तुम्हारा ही नाम है क्या ? मेरी आनन्दी को देवाल से तुम्ही उठा लाए थे क्या ? तुमने क्या समझ लिया था, कि मोतिमा मर गई है और उसकी आन-औलाद लावारिश हो गई है ?"

"ना, मोतिमा, ना।"—नटवरसिह ने, तमाखू की चिलम एक ओर टिकाकर, दोनो हाथ जोड दिए—"परमेश्वर साक्षी है, लली ! ऐसा कोई अनिष्ट मैने नही सोचा था। एक कसूर मुझ से जरूर हो गया। मै तुम्हे जमानत पर छुडाकर लाने वाला था, मगर दूसरे लोगो के बहकाने मे आकर पडा रह गया। मगर मै तुम्हारी आनन्दी को सिर्फ इसलिए ले आया, लली, कि नलतुरे की छडी-जैसी बढती कन्या है और देवाल-हीराडुँगरी के इलाके मे हजार किसम के लोग रहते है। कन्या काँसे की कटोरी होती है, मोतिमा ! एक बेर हाथ से छूट कर टूटी हुई काँसे की कटोरी फिर नही जुडती। एक बार माता-पिता और सगे बिरादरो की छाया से छूटकर, गलत रास्ते पर गई हुई कन्या का सुख लौटाना कठिन होता है। कन्या और कच्ची पाक

1. चिड़ बाज, जो उड़ने-उडते एक ही ठौर बडी देर तक थिरा जाता है।

के घडे को बडे जतन से हाथ लगाना पडता है, लली ! तुम तो खुद कन्या-वस्था पार करके, बाल-गोपालो वाली बन गई हो। मुझसे ज्यादा तो तुम्ही समझ सकती हो।"

कौशिला अबतक नटवरसिह को ही घूर रही थी, कि—अरे, यह तो वही पुजारी है, जिसने कौशिला दिदी की घात-पूजा का काला बकरा काटा था !

बोली—"मोतिमा दिदी, पुजारी ज्यू बहुत लगती हुई और ऊँची बात कह रहे है। तुम्हारी आनन्दी तो भॉवर फिराने-लायक हो गई है। मुझे तो इस बानर-जैसी पीठ पर चढी हुई लिलुली छोरी की फिकर ही रात-दिन कठकीडो-जैसी काटती रहती है। कन्या तो चौमसिया-कॉस-जैसी गॉठ-गाँठ बढती चली जाती है। पुजारी ज्यू बडी दया-ममता वाले आदमी है, इसलिए तेरी आनन्दी को सॅभाल रखा है।"

मोतिमा किसी और ही लोक मे खोई हुई थी। उसके कानो मे नटवर-सिंह की बात मँडरा रही थी, कि 'तुम तो खुद कन्यावस्था पार करके, बाल-गोपालो वाली बन गई हो।'···और आँखो मे घूम रहे थे किशोरावस्था के कोमल और लजीले क्षण, जिनमे मोतिमा के कपोलो पर—जरा-जरा-सी शरम की बातो पर भी—पके हुए अमरूद के बाहर के लाल छीटो-जैसी अरुणाई उभर आती थी। कपोलो की ऊँची परते सिदुरा जाती थी और पूस-माघ की तुषार से पहले-पहल इन्ही ऊँची परतो की छाल फूटती थी। और गोपी भौजी जैसी बेशरम औरत का साथ था। पानी भरने साथ निकलती थी, तो गुडी साली कमर की झोल खीचने लगती थी—"ननदी, ठीक ठौर पर दाडिम-जैसी कैसे फूट गई है छाल ? किसके मोतियो का सुख पाया है, लली ?"

मोतिमा मारने को दौडती थी। गोपी भौजी दौड जाती थी। मोड पर रुककर, तॉबे की गगरी पर ताल-जैसा देती थी—"द, अब रात की शरम प्रभात मे क्यो चुभ रही है, लली ? अरे, बिना दो पाटो मे फँसे तो गेहूँ के दाने की छाल भी नही छिलती है।"

और तब, कभी-कभी, मोतिमा—बडी मोहिल दीठ फिरा-फिराकर—

सुहागिनी भौजियो के कपोलो की ऊँची परतो को देखती थी। और उनमें उसे दोहार-मोतियो की तीखी पाँत के स्पर्श से गदराया हुआ सुख दिखाई देता था। और वह तो तब कपालफूटी विधवा ही थी, सो यह सोच-सोचकर मन कलपता था, कि औरो के कपोलो की ऊँची परतं दोहार-मोतियो से मिले सुख से फूटती हे, सिदुरा जाती हे—उसके कपोलो की छाल तो ठडी तुषार लगने से फूटती है, वस्स।

× × ×

सोचते-सोचते, आज भी मोतिमा के बिथुरे हुए होठो पर एक कोमल हँसी उभर आई। दिगौ, जब कन्या-किशोरी थी और हाल की तरुणाई थी—तब कैसा लजीला मन था, तब कैसी कौली देह थी। और बृजेन्दर मस्ताना के फेर मे पडी थी, तब से आज तक कैसे-कैसे दिन देखने को मिल गए! न-जाने कितनी बार कितनो के तीखे दाँत लगे थे और कपोलो की छाल भी फूटी थी। मगर, असत्त की कटाँस से फूटी हुई छाल के खून मे और सत्त के सगी सुबरन पिया के मोहिल मोतियो के स्पर्श से कपोलो की ऊँची पर्तो पर उतर आने वाली आत्मा की अरुणाई मे—बहुत अतर होता है। खून से विकृति और वितृष्णा उपजती हे। अरुणाई से सारा मुख-मण्डल तँबिया जाता है। लगता है, सुबरन शुक के प्यार का सूरज कपोलो के उदयाचलो पर आकर थिरा गया है।

आनन्दी के अब ऐसे ही दिन आने वाले है, जिनमे आत्मा और देह, दोनो तरुणा जाती है और कपोलो की ऊँची पर्तों के उदयाचल सुवरन पिया के प्यार की सूरज-किरनो की उजास पाने को विकल हो उठते है। कौशिला ठीक कहती है, कि कन्या बढने को चौमसिया-काँस-जैसी बढती है। और नटवरसिह भी ठीक ही कहता है, कि कन्या काँसे की कटोरी होती है, उसे बडे जतन से सँभालना पडता है।

—मगर मै अभागिनी तो अपनी ही देह को नही सँभाल पाती हूँ। चोरी-जारी से कब तक सतान पाली-पोसी जा सकती है?—मोतिमा के मन मे प्रश्न उभर आया, तो बोली—"पुजारी ज्यू, मेरी निराधार छोरी को तुमने

आसरा दे दिया, तुम्हारे इस ऋण का तारण मै कहाँ कर पाऊँगी। मै तो जनम की ही अभागिनी हूँ।"

मोतिमा रो पडी, तो नटवरसिह का भी मन भर आया। बोला—"रोती क्यो हो, लली ? इस ससार मे नर का नारायण से ज्यादा रखवाला कोई नही है। ' और नर को जब अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो जाता है, जब वह दूसरो के क्लेश को हरने के लिए तैयार हो जाता है, तभी वही नारायण का रूप भी बन जाता है। मेरा भी तो इस तृतीयावस्था मे पहुँचकर वानप्रस्थ का सजोग आ गया है। पहले जुगो मे राजा-महाराजा लोग होते थे। राज-पाट और घर-गृहस्थी के सारे सुख भोगकर, वानप्रस्थ आश्रम मे चले जाते थे। मेरी भी एक मामूली-सी गृहस्थी थी, मगर उसी मे मेरी आत्मा ऐसी रमी हुई थी, कि चित्त मे मोह-माया ही भरी हुई थी। हरि-कृपा से अपने-आप ऐसा सजोग आ गया, कि अकेला पूत भी चला गया और घरवाली भी। मैं ससुरा परमेश्वर का बनाया हुआ वानप्रस्थ रह गया हूँ। मगर अपनी आत्मा से बने हुए, और दूसरो के जरिए से बनाए हुए वानप्रस्थ मे अन्तर होता है। यही मोह-माया का अन्तर मुझसे टूट नही पाता है। उदुली काकी के दो बकरछौनो से ही जब मैं अपने मन की माया नही उठा पाया, तो आनन्दी तो आखिर कन्या ही है। एक इस छोरी ने मेरी आत्मा को भी बाँध रखा है। तेरे चित्त मे इस बूढे एकछड पर दया आ सके, तो इसे यही रहने दे, लली ! इतना वचन मै देता हूँ, कि जो-कुछ भी मेरे पास राई-तिनका है, सब इसी छोरी की पीली हथेलियो पर धर जाऊँगा।"

कहते-कहते, नटवरसिह की आँखे छलछला आई और उसके जुडे हुए हाथो की अँगुलियाँ काँपने लग गई। मोतिमा उसके पाँवो पर झुक गई—"पुजारी ज्यू, जनम देने वाले पापी तो न-जाने कितने थे। धरमपिता कोई नही था। मै अभागिनी कहाँ सँभाल पाऊँगी इस काँसे की कटोरी को ? तुम पुजारी ज्यू हो, नारायण के सेवक हो। तुमसे बडा धरमपिता और कौन मिल सकता है, मेरे अभागे छौनो को ? एक यह हरेन्दर छोरा और है मेरे साथ। इसे भी अपनी शरण मे ले लो, तो मै अपने पापो का दण्ड भुगतने

कही दूर चली जाऊँगी।

कौशिला इस बात से तो सुख पा रही थी, कि चलो, मोतिम बेचारी के बाल-बच्चो को सँभालने का बन्दोबस्त हो गया है। सब गोल्ल देवता की मेहरबानी है। मगर वह बेर-बेर सूरज के रथ की ओर भी दीठ लगा रही थी, कि 'हे राम, यह मोतिम दिदी तो न-जाने कब तक यही बातो मे लगी रहेगी ? रात घिर आई, तो घर कैसे लौटेगे ? कही यह यही ठहर गई रात को अपने बालको के पास, तो बस।' ''

आगे बढकर बोली—"मोतिम दिदी, पुजारी ज्यू-जैसा दयावान पुरुष तुमको और कोई नही मिलेगा। तेरे बाल-बच्चो का पोषण जैसा यहाँ होगा दूसरी ठौर कही नही हो सकता। अच्छा, तू तो यही ठहरेगी ? मै जरा जल्दी से पूजा करने को जाती हूँ। घर लौटने को रात हो जाएगी। पुजारी ज्यू हो, जरा एक आने का तेल और एक आने के बताशे दे देना।"

नटवरसिह ने कौशिला की ओर आँखे उठाई, तो मोतिमा बोली—"यह बेचारी भी दुष्टो की सताई हुई है। सौत ने इसका हक मार लिया है और सास-ससुर ने घर-गृहस्थी से बाहर निकाल दिया है। खसम ससुरा पलटन मे मौज कर रहा है और यह बेचारी इस साँझ की बखत गोल्ल देवता के दरबार मे हाहाकार करने दौड रही है। अरे, जैसी दुखियारी महतारी है यह, इसके आँसुओ से पानी मे पडी हुई नून की डली की तरह गलेगे पापी-अन्यायी ससुरे !"

नटवरसिह सारी स्थिति समझ गया। बोला—"लली, इस साँझ की बेला देव-दरबार मे हाहाकार करना ठीक नही है। दुःख के दिनो को पत्थर की छाती बनाकर झेलना चाहिए और सच्चे मन से नारायण की सेवा करनी चाहिए। हाहाकार-फूत्कार करने से अपने मन के कोप को सतोष भले ही मिल जाए, मगर नारायण को और अधिक क्लेश पहुँचता है। खैर, इस समय अब विस्तार से क्या बताऊँ तुमको, लली ! जरा विश्राम कर लो तुम दोनो। अल्मोडा लौटने का बखत नही रह गया है अब। आज यही रहो, शाति से अपनी रात काटो। सबेरे मन्दिर मे पत्र-पुष्प-नैवेद्य चढाकर

सतोषी-सुखी आत्मा लेकर, अपने घर को लौट जाना। जाओ, तुम दोनो जने ऊपर बरामदे मे बैठ जाओ। मै आनन्दी से कमरा भी ठीक करा देता हूँ। आनन्दा, चेली, जरा अपनी महतारी और काकी के लिए चहा तो बना दे, लली!"

अठारह

कमरे मे बैठे-बैठे, कौशिला आर मोतिमा एक-दूसरे के सुख-दुःख लगाती रही। आनन्दी रोटियाँ बनाने चली गई थी, हरेन्दर सो गया था और लिली भी। पहले तो कौशिला ना-ना करती रही थी, मगर भूख इतने जोर की लग आई थी, कि कल भोर तक उपवास झेलना कठिन लग रहा था। देह इतनी थक चुकी थी, कि जब बरामदे मे बैठी, तब मोतिमा से ही ठीक से नही बोल पा रही थी। सबेरे तक तो भूख से देह और भी पथरा जाएगी। तब अगर जैसे-तैसे पूजा की थाली सँभालकर, पहुँच भी गई गोल्ल देवता के दरबार तक, तो अपने दु ख-सकट की गाथा कैसे सुना पाएगी ? होने को तो, खैर, गोल्ल देवता परमेश्वर है। नारायण है। नर-नारियो के घट-घट की राई-रत्ती जानते है, सो कौशिला के कलेजे मे खुदी हुई कथा भी बाँच ही लेगे। मगर जरा अपने मुँह से चार दु ख के आँखर कहने से परमेश्वर के चित्त मे और अधिक दया-ममता जागेगी।

यही सोचते-सोचते, कौशिला ने चाय भी पी ली थी और यशोदा सासू के यहाँ से मिली हुई मिठाई भी चख ली थी। मोतिमा, हरेन्दर और आनन्दी को भी मिठाई-बिस्कुट का एक-एक टुकडा पहुँचाते हुए, बोली थी—"अब आज की रात तो यही काटनी है, मोतिम दिदी! सबेरे जरा जल्दी जगा देना मुझको। एक घटी गगा जल से स्नान करके, तब जाके पूजा करने चली जाऊँगी।"

रोटियाँ खाने के लिए भी, ज्यो-त्यो, हाँ भर दी थी कौशिला ने और अब आनन्दी की प्रतीक्षा कर रही थी। बातो से भूख बिलम रही थी और चाय पीने के बाद सूखा कठ भी कुछ ताजा हो गया था, सो कौशिला मोतिमा से कह रही थी—"गोल्ल देवता बडे दयावान और चमत्कारी देवता है, मोतिम दिदी! अब तू ही प्रत्यक्ष देख ले उनके चमत्कार को। मै घर से कोरे पाँच पैसे और रीते पेट लेकर निकली थी। रास्ता काटते-काटते ही यशोदा

सासू मिल गई। इस विपदा की घडी मे दस-पॉच रुपये एक साथ देखने मे आ गए। एक गास अच्छा लिली के पेट मे भी चला गया और मेरे भी। हे, गोल्ल देवता! आज तो तुम्ही बैठ गए थे, यशोदा सासू के घट मे। और तू अपनी ही हालत देख ले, दिदी! कैसे नग-धडग छाती पीटती, हाहाकार करती, पागल-जैसी विलाप करती दौड रही थी तू, और कहाँ इस समय शाति के साथ अपने बाल-बच्चो के बीच मे बैठी हुई है। मै तो यही कहूँगी, कि पुजारी ज्यू के घट मे तेरे लिए गोल्ल देवता की बैठक लग गई है।"

मोतिमा ने मन्दिर की दिशा मे हाथ जोड दिए—"सब तुम्हारी ही माया है, परमेश्वर! कौशी, लली, जरा सवेरे मुझे तू जल्दी उठा देना। मै भी एक छलक स्नान करके, गोल्ल देवता के मन्दिर मे दिया जला आऊँगी।"

"अरे सिर्फ दिया ही क्यो जलाएगी तू, दिदी? चार मुट्ठी चावल के भी रख लेनी और पॉच पैसे भेट के भी! जैसे अत्याचार तुझ पर बृजेन्दर मस्ताने ने किए है, उन्हे छाती कूट-कूटकर, गोल्ल देवता के सामने सुना देना। एक काला बकरा भी बोल देना, कि 'हे परमेश्वर, जिस दिन मेरा हरेन्दर सयाना हो जाएगा, दो-चार पैसे कमाने लगेगा और जिस दिन बृजेन्दर मस्ताने का नाश हो जाएगा—उस दिन एक कुतकुतान काला बोकिया तेरे दरबार मे चढा जाऊँगी!' यह बात गाँठ बाँध ले, मोतिम दिदी, कि गोल्ल देवता के दरबार मे जैसा तू सकलप करेगी, वैसी ही तुझको सिद्धि भी मिलेगी।"

"जैसा तू कह रही है, ठीक वैसा ही करूँगी, बैणा! अठारह बरसो से कलेजे पर चोट-ही-चोट झेलती चली आई हूँ। रख दूंगी अपना छिपा हुआ कलेजा निकालकर गोल्ल देवता के चरणो मे, तो मेरे कष्टो की कथा से गोल्ल देवता की मूरत भी थरथराने लग जाएगी। गोल्ल देवता के लिग मे ही अपने छौनो के सिर पर फिराए हुए चावलो की मूठ फेक दूँगी, कि—ले, परमेश्वर! अब तेरी ही शरण बाकी रह गई है। इन छौनो की भी रक्षा कर, और मेरे ऊपर किए गए अत्याचारो का भी इन्साफ कर!" मोतिमा फिर दोनो हाथ जोडती हुई बोली।

इतने मे आनन्दी रोटियाँ ले आई।

बीच-बीच मे, नटवरसिह आकर पूछता रहा—"सुख-सतोष के साथ गास-टुकडा खा लेना तुम दोनो। आत्मा और देह को ज्यादा दुख देना ठीक नही रहता। काया-आत्मा भी नारायण की ही सिरजी हुई है। उसका जतन करना नर-नारियो का धरम हो जाता है। दु ख-सुख के पडाव तो जिन्दगी मे आते-जाते ही रहते है।"

भोजन करने के बाद, कौशिला और मोतिमा सोने लगी थी, कि आनन्दी आइ और बोली—"माँ, तुझे बाबू बुला रहे है जरा।"

मोतिमा-कौशिला दोनो समझ गई, कि आनन्दी और हरेन्दर के बारे मे बात-चीत करने को बुला रहे होगे पुजारी ज्यू।

× × ×

घडी-भर तो ऐसी नीद आई कौशिला को, कि बेभान सोई रही। मगर फिर नीद खुल गई। सपने मे भी वह गोल्ल देवता के मन्दिर मे पुकारेँ करती रही थी। नीद खुली, तो यही सोचने लगी, कि देवता के दरबार मे अपनी करुण कथा कैसे, किन शब्दो मे सुनाएगी।

बाहर की ओर बरामदा एक था। अन्दर की ओर लम्बा कमरा था, जिसमे पटबाड डाली हुई थी। पटबाड के पश्चिम की ओर वाले हिस्से मे कौशिला सोई थी, लिली सोई थी और हरेन्दर सोया हुआ था। कौशिला की नीद खुल गई, तो उसे मोतिमा का ध्यान आया, कि—अरे, मोतिमा तो पुजारी ज्यू से बाते करने गई थी ? कमरे मे उजाला नही था। सलाई जलाकर, कौशिला ने कमरे मे दीठ फिराई, तो देखा—हरेन्दर, लिली के अलावा आनन्दी भी वही सोई हुई थी। 'अचानक एक अजीब-सी कल्पना कौशिला के मन मे उभरी—पूरब की तरफ वाले कमरे मे कही पुजारी ज्यू और मोतिमा तो नही सोए हुए है ?

यह सोचते ही कौशिला की आँखो से नीद का बोझ एकदम उतर गया और उसने अपनी सारी देह को एकदम हलका अनुभव किया। कान लगाए, तो उसे लगा, कि पटबाड के पार कोई धीमे-धीमे बोल रहा है।

अपनी ठौर से धीरे-धीरे सरकती, कौशिला पटबाड तक पहुँच गई।

कान लगा दिए, तो सुना, नटवरसिह कह रहा था—"उदुली काकी के श्राप से मेरी घर-गृहस्थी उजड गई थी। जाते-जाते मेरी सेवा से प्रसन्न होकर, उदुली काकी बडी ममता-भरी आँखो से मुझे देखती रही थी। उस समय तो मैं उसकी आँखो की भाषा पढ नही पाया मगर, आज सोच रहा हूँ, कि उस समय उदुली काकी की आँखो मे यही आशीर्वाद होगा मेरे लिए, कि—नटवरिया, रे! जनम-मृत्यु तो खैर, परमात्मा के ही खेल है। मगर मेरा श्राप एक बहाना बन गया था, तेरी घर-गृहस्थी उजड गई थी। तूने अपनी शाति और अपनी सेवा से मुझ बुढिया का सताप मिटा दिया है। जा, परमेश्वर तुझे फिर से बनी-बनाई गृहस्थी का सुख देगे। "

नटवरसिह की बाते सुनकर, तो कौशिला की सारी देह एकदम झनझना उठी—अरे, इसीलिए तो मोतिमा को देखते ही शहद-जैसा चटा रहा था यह साँड!

मन तो एकदम घिना गया था कौशिला का, मगर सुनने का मोह नही छोड सकी। उसकी आँखे भी विकल हो रही थी, यह देखने के लिए, कि न-जाने कैसे सोए पडे होगे दोनो पापी। मगर, कमरे मे—पटबाड के इस ओर, उस ओर—दोनो ओर अधकार ही था। एक बार तो कौशिला का मन हुआ, कि सलाई जलाकर, पटबाड के किसी छेद से उस ओर झाँके। मगर फिर चुपचाप कान लगाए लेटी रह गई, कि—अरे, मेरे देखने से कोई पापियो का पाप थम थोडे जाएगा? और उलटे कही जो मुझको जो ऊँची-नीची बात सुनाएँगे।

कौशिला ने मोतिमा को बोलते भी सुना—"पुजारी ज्यू, आज तक जिस ठौर गई हूँ, घोर शोक-सताप के सिवा और कुछ कही मिला नही। तुम पर भरोसा तो कर रही हूँ, मगर मन फिर भी कलप ही रहा है, कि अपने छौनो के लिए एक पाप और मोल ले रही हूँ सिर पर। कही ऐसा न हो, कि यहाँ से भी हाय-हाय ही हाथ लगे?"

मोतिमा रो भी रही थी।

कौशिला को लगा, कि नटवरसिह अपने हाथो से मोतिमा के आँसू पोछ

रहा है—"पाप ही समझती है, तो जा उधर उस कमरे मे सो जा, मोतिमा। तेरे कलेजे का सताप मोल लेकर घर-गृहस्थी का सपना देखना ठीक नही। पडाव तो कई लोगो की जिदगानियो मे न-जाने कितने आते है, मगर हरेक पडाव पर सारी उमर कोई नही ठहर पाता। दो-तीन पडावो मे न टिक पाने के सताप से ही हरेक पडाव को छोड देना भी ठीक नही होता। कायदे से तो, इस वानप्रस्थ धारण करने की उमर मे आकर मुझे भी माया-मोह के जाल मे नही फँसना चाहिए। मगर कुछ नर की आत्मा का मोह होता है, कुछ नारायण की इच्छा पर हम नर-बानरो का वश नही होता। आज तक किसी परनारी की तरफ आँख उठाकर बुरी नियत से नही देखा मैंने।··· और तुझे भी बुरी नियत से नही देख रहा हूँ, मोतिमा! एक मेरे मन का पागलपन ही है यह, कि तुझमे अपनी घरवाली की छाया देखने लगा हूँ। घरवाली की छाया देखते-देखते, बीती हुई जिदगानी के सुख के दिन भी याद आ गए है। नर की आत्मा बडी कमजोर होती है, मोतिमा! खैर, तू इसमे पाप समझती है, तो मै जरा-सी भी जिद्द नही करूँगा। जहाँ तक तेरे बालको के पालन-पोषण का सवाल है, तू मुझे नही भी अपनाएगी, तो भी मैं इन्हे अपनी सतति की तरह पालूँगा। मेरे पास अपना क्या है? गाँव मे थोडी-बहुत खेती है, दो-चार गाय-भैसे। और यहाँ पर एक छोटी-सी दुकान। यह भी सब परमेश्वर की ही माया है। तेरे बालक दुःख के मारे हुए है, मगर है तो उसी परमपिता के सिरजे हुए! नर के बीज का तो एक बहाना है। आत्मा का बीज उसी परमपिता से मिलता है। 'इतना तो तू भरोसा रख, कि मेरी ओर से यह टूटी-फूटी सारी सम्पत्ति तेरे ही बालको को मिलेगी। बाकी यहाँ कौन किसका पालन-पोषण करता है? सब उसी नारायण के दिये हुए टुकड़े खाते है।' मेरे मन मे तो एक कमजोरी यही आई थी, कि अब बाकी बची हुई जो उमर है, उसे तुझे घरवाली की ठौर पर समझते हुए काट दूँगा, तो यही सुख पा लूँगा, कि मेरी घर-गृहस्थी कभी उजडी ही नही थी।···मगर, तू तो दुखियारी नारी है, तेरे आँसू मोल ले करके मै कहाँ सुख पाऊँगा?···अभी तो तेरे-मेरे बीच मे पाप नही पनपा है। जा,

उधर अपने बालको के साथ सो जा।"

इतना सुनते ही, कौशिला धीरे-धीरे अपनी ठौर सरक आई, कि मोतिमा अब इस तरफ को आ रही है। कौशिला को पश्चात्ताप भी हुआ, कि उसने बेकार मे ही ओछी बात सोची। बेचारा पुजारी भी मन का साफ है और मोतिमा की आत्मा भी पवित्र ही है।

कौशिला प्रतीक्षा करती-करती निंदिया गई, मगर मोतिमा नही लौटी। नीद खुली तो कौशिला ने देखा—द्वारो की रेखाओ मे छनकर, उजास कमरे मे फैल गई थी। बच्चे सभी सो रहे थे। कौशिला उठी और पटबाड की एक रेखा से उस ओर झाँका। देखा, मोतिमा एकदम शात प्रतिमा-जैसी नटवरसिह की छाती से लगी हुई है और नटवरसिह की बाँहो का घेरा उसकी कमर मे पडा हुआ है।

थू-थू-थू थू-थू-थू

कौशिला का मन एकदम घिना गया—हे राम! आँख उघडते ही कैसे पापियो के दर्शन हो गए! परमेश्वर हो, मेरा पाप तो माफ कर देना। ये दो पापी जो ऐसी बेशरमी से नही सोये होते, तो मै कहाँ से देखती? कुछ नही, वे मोतिमा! इतने बाल-बच्चो के होते हुए भी जो तू इस आधी उमर मे मरद का मोह नही छोड पाई है, तेरी ऐसी हीन नियत पर भी थूक ही पडे!

कौशिला का मन एकदम घिना गया था। चुपचाप मन्दिर मे चल देने की बात उसने सोची, तो फिर सुधि आई—अरे तेल-बताशे तो मैंने लिए ही नही है? खैर, अब तो किसी दूसरी दुकान से ही लेना ठीक रहेगा। ऐसे हीन नियत के आदमी के यहाँ के बताशे गोल्ल देवता के दरबार मे चढाने से और उलटा पाप जो लगेगा!

कौशिला ने चुपचाप लिली को उठा लिया। नहाने की सुधि आई, तो मन्दिर-अहाते के नल मे ही नहाने का निश्चय कर लिया। याद आया, कि मोतिमा ने कहा था—"जरा सबेरे मुझे भी जल्दी ही जगा देना। मै भी एक छलक स्नान करके, गोल्ल देवता के मन्दिर मे दिया जला आऊँगी।"

द, तू पापिणी रॉडी क्या जलाएगी किसी मन्दिर मे दिया ? और क्या तेरे जलाए हुए दीपक की ज्योति से उजाला फूटेगा ?—कौशिला, मन-ही-मन बडबडाती हुई, बरामदे से नीचे उतर गई—बडा सकल्प-जैसा बाँध रही थी पापिणी, कि गोल्ल देवता के लिग मे चावलो की मूठ चढाएगी ! अरे रॉडी ! जिस मस्तानी औरत का चित्त अलग-अलग मरदो का स्वाद लेने मे लगा रहता है, उस पापिणी का चित्त देवता के लिग मे कहाँ श्रद्धा कर सकता है ?·· हे राम ! हे परमेश्वर हो, गोल्ल देवता ! सबेरे-सबेरे आँखो से बुरी बात देखी है, मेरा कसूर माफ कर देना। मै अभी नहा-धोकर पवित्र मन से तुम्हारी सेवा मे पहुँचती हूँ स्वामी !

चौथी मुट्ठी

उन्नीस

तेल-बताशे खरीदकर, नल पर स्नान करने के बाद, 'ओम्-हर-हर-हर-हर-महादेव' गुनगुनाती हुई, कौशिला सीधे गोल्ल देवता के मन्दिर मे जा पहुँची।

पहले पूरब की ओर पडने वाले द्वार पर, पूजा की थाली रख आई। फिर वही से, मन्दिर की चारो ओर लगी हुई घटियाँ एक-एककर बजाती हुई, 'हे नारायण, हे परमेश्वर! हे नारायण, हे परमेश्वर!' गुनगुनाती, मन्दिर-द्वार तक लौट आई—"पहली परिक्रमा तो कर आई हूँ, परमेश्वर! दुखियारी औरत हूँ, भूल-चूक माफ कर देना। पुजारी तो पापी है। मै अब अपने ही अदाज से पूजा करूँगी।"

इतना कहकर, कौशिला ने देर तक दोनो हाथ जोड रखे—"पुजारी के शिलोक और मतरो से देवता प्रसन्न होते है कहते हैं, मगर मुझ दुखियारी का तो एक-एक आँखर ही शोक-सताप का शिलोक है। मेरी विपदा के अक्षरो को ही पूजा के मतरो के रूप मे स्वीकार कर लेना, स्वामी!"

प्रार्थना समाप्त करके, लिली को साथ लेकर, कौशिला ने मन्दिर के अन्दर प्रवेश किया, मगर फिर देव-मूर्तियो से दूर ही खडी रह गई—"औरत जात का छूना नरो मे अशुद्ध माना गया है। मगर तुझ परमेश्वर के लिए औरत-मर्द दोनो एक मिट्टी से बनाए हुए खिलौने है। अपने चरणो मे पडे हुए हमारे सिरो की लाज रख लेना, स्वामी!" इतना कहकर, कौशिला ने लिली का सिर भी गोल्ल देवता के चरणो के पास झुका दिया—"इस लावारिश छोरी को होते हुए कमाऊ बाप के सुख का गास दुर्लभ हो गया है। जिन अत्याचारियो ने इस नादान छोरी के मुँह के निवाले छीने है, उनका इन्साफ तो अब तू ही करेगा, परमेश्वर!"

फिर कौशिला ने सोचा, कि कही ऐसा न हो, कोई और पूजा करने आ जाए? फिर तो उतने उन्मुक्त मन से कौशिला घात डाल नही पाएगी,

जितने खुले कण्ठ से इस एकान्त मे डाली जा सकती है !

इतना सोचना था, कि कौशिला ने दोनो हाथो की हथेलियाँ अपनी छाती पर मारी—"हे परमेश्वर, गोल्ल देवता !"

गोल्ल देवता के मन्दिर मे बडी भोर ही कोई दीपक जला गया था। कौशिला सोचने लगी, कि पहले घात डाल ली जाए, बकरा बोल दिया जाए, फिर अन्त मे अपनी ओर से दीपक जलाकर, फूल-बताशे चढा देने होगे।

लिली अकुलाई, अचकी हुई टुकुर-टुकुर अपनी माँ को ताक रही थी। कौशिला ने उसकी आँखो मे भरे हुए आँसुओ को, पलके दबा-दबा कर, अपनी अगुलियो के सिरो मे लगाया और फिर सीधी खडी हो गई। नखछीटे फेकती हुई बोली—"ले परमेश्वर, ये मेरी नादान और होते हुए बाप की लावारिश छोरी के आँसू है !"

फिर अपनी आँखो के आँसुओ के नखछीटे फेकती हुई, बिथुर-बिथुरकर बोली—"और ये मुझ दुखियारी के आँसू तेरे चरणो मे बिखर रहे है, स्वामी ! कर रही हूँ, मै सच्ची चोट खाए कलेजे से पुकार, तो मेरा इन्साफ और अत्याचारियो का नाश कर देना !"

दुबारा हथेलियो से छाती पीटते हुए, कौशिला ने पहले खूब विलाप किया और फिर आँचल मे हाथ डालकर, एक मुट्ठी चावल की बाहर निकाल—मुट्ठी को असह्य आक्रोश के साथ भीचकर—एकदम प्रबल वेग से कौशिला ने गोल्ल देवता के चरणो मे चावल की मूठ मार दी—"ना-आ-आ-श करना, हो परमेश्वर! जिस सौत राँडी ने आते ही मेरा खसम मुझसे छीन लिया, उस तरुली राँडी का तो सत्या-आ-आ-ना-आ-आ-श करना !"

कौशिला के हाथ से फरफराती हवा के झोके से, गोल्ल देवता के चरणो मे जलता हुआ दीपक एकदम बुझ गया, तो कौशिला को एक तृप्ति मिली, कि 'गोल्ल देवता ने पुकार सुन ली है। जैसे यह दीपक बुझा है, मुझ दुखियारी की हाय से, ठीक ऐसे ही, मेरे दुश्मनो के दीपक भी बुझेगे !' तीन बार उलटी हथेली से कपाल ठोककर, एक सतोष की साँस लेकर, और भी

प्रचण्ड वेग से, कौशिला ने दूसरी मुट्ठी चावल की भरी और जोर से फेकते हुए चिल्लाई—"जिस सासू रॉडी ने मुझ अभागिनी दुखियारी से सौतिया-डाह-जैसा रखा और हमेशा मेरे कलेजे मे शूल-ही-शूल चुभोती रही—हे परमेश्वर, हो गोल्ल देवता ! सुन ले मेरे चोट खाए हुए चित्त की पुकार ! —उस सासू रॉडी का भी एकदम जड से ही कद्दू उखाडकर फेक देना !"

तिबारा तीन उलटी हथेलियाँ कपाल पर ठोककर, तीसरी चावल की मुट्ठी भरी कौशिला ने, और एकदम सिर से ऊँचा हाथ ले जाकर, जोर से फेकती हुई बोली—"जैसा मुझे मेरे ससुर रँडुवे ने सताया, इस सारे ससार मे किसी भी दूसरे ससुर ने नही सताया होगा। बरसो तक अपने मस्ताने जिसम की छाल पर पडे हुए पीब के दाने फुडवाता रहा अन्यायी और आखिर मे मुझे सोटे मार-मारकर, भरी-पूरी गृहस्थी से बेदखल कर दिया ! ...ठैर रे अन्यायी ! मुझ दुखियारी को सताकर, तू कहाँ सुख पाएगा ? परमेश्वर गोल्ल देवता होगे सच्चे देवता, तो तेरा तो एकदम सत्या-आ-आ-आ-ना-आ-आ-आ-श ही करेगे !"

इतने अदम्य आक्रोश और जोर से कौशिला चावल की मुट्ठियाँ फेक रही थी, कि उसके कधो मे चसक पड गई थी और गला खँखराने लग गया था। थोडा-सा रुकी कौशिला, तो फिर उसके थमे हुए आँसू छलछला आए—हे, राम ! सबेरे के समय बाल-गोपालो वाली औरते तुम्हारे दरबार मे दीपक जलाया करती है, प्रार्थना करती है, मगर मेरे कठ से तो हाहाकार-ही-हाहाकार फूट रहा है ? अरे, मोतिमा बिचारी ने तो मुझसे भी बडे-बडे सकट झेले है, मगर जरा-सी तेरी मिहरबानी से पॉव टिकाने को ठौर मिली ही थी, कि एकदम शात चित्त से पुजारी ज्यू के पास ही थिरा गई। इसे कहते है नारी की छाती, जो अपने बाल-गोपालो के लिए कैसे-कैसे सकट के विकट परबतो को अपनी छाती पर झेल लेती है ! · एक मैं रॉडी भी हूँ, जो जरा-से सकट से तिलमिलाकर ऐसा घनघोर विलाप कर रही हूँ ! ..

चौथी मुट्ठी निकालते-निकालते कौशिला को ऐसा लगा, कि सास, सौत और ससुर के प्रति जो एक अदम्य आक्रोश का गोला उसकी छाती की

गहरी पर्तों मे अटका हुआ था, वह तो बाहर निकल गया है ।

कौशिला चौथी मुट्ठी निकालकर, चावल फेकना चाहती थी, कि—हे परमेश्वर, जिस निठुर-निर्मोही खसम ने कच्ची उमर मे उतना सुख दिया। पतग-जैसा पीछे-पीछे उडता रहा । मगर जरा-सी तरुणाई ढलते ही और दूसरी सयुरियो का स्वाद पाते ही, जिसने मुझे सूखी-बासी रोटी की तरह दूर फेक दिया—और वादे कर-करके भी गुजारे की रकम के नाम पर अँगूठा दिखा रहा है—ऐसे निठुर-निर्मोही और अन्यायी खसम से तो मै रॉड ही भली । उस खसम का भी तुम ना

मगर, कौशिला फिर यह सोचने लग गई, कि—अगर मेरी घात फल गई, तो सौत-सासू और ससुर रॉडियो का तो नाश हो ही जाएगा ? इन तीनो तिकटो का जो नाश हो गया, तो आखिर लिली के बौज्यू मेरे ही साथ तो गृहस्थी बसाएँगे ? अरे, मस्तानी सौत रॉडी का बहकाया हुआ मरद है। सौत ससुरी ही नही रह जाएगी, तो फिर मुझे ही प्यार करेगा। आखिर तीन-तीन बालक उसी से तो जनमाए है, मै कही दूसरे से तो नही लाई ?

इतना सोचते-सोचते, कौशिला और थक गई । उसे लगा, वह इतना विलाप कर चुकी है, कि अब और अधिक विलाप करना वश मे नही रह गया ।

कौशिला ने, चावल की चौथी मुट्ठी दोनो हाथो मे बॉट ली, फिर श्रद्धा के साथ हाथ जोडते हुए, उन चावलो को अपने ऑचल मे ही वापस डाल दिया—"लिली के बाबू को तो सुखी-सतोषी काया के साथ घर लौटा लाना, स्वामी ! परदेश मे हे बेचारे, पलटन की खतरनाक नौकरी मे है। वहाँ उनका तुम्हारे सिवा और रक्षा करने वाला ही कौन है । लिली के बौज्यू सुखी-सतोषी लौट आएंगे, मेरे सारे छीने हुए हक्क मुझे वापस मिल जाएँगे, तो सुदिनो की पूजा चढाने आऊँगी । घी के दीपक जला जाऊँगी, स्वामी !"

इतना कहकर, गोल्ल देवता के चरणो मे माथा टेक दिया कौशिला ने, तो फिर ऑसू छलछला आए—"मै क्या विलाप करती हूँ, मेरा दुःख विलाप करता है, स्वामी ! अरे, मै कोई डायन-चुडैल तो हूँ नही ? अगर मेरे कलेजे

मे जो तिरशूल नही मारे, मेरा हक्क तो मुझे दे दे, तो मुझे सौत या सासू से किस बात का बैर रह जाए ?"

खूब रो लेने पर, कौशिला और भी हलकी हो गई। शात चित्त से, उसने दीपक जलाए और फूल-बताशे तथा पाँच पैसे गोल्ल देवता के चरणो के पास रखती हुई, बोली—"मैं तो एक मामूली-सी दुखियारी औरत हूँ, स्वामी ! क्या भला है, क्या बुरा—इसका फैसला मै कहाँ कर सकती हूँ ? मैने तो अपनी व्यथा तुमको सुनानी थी, सुना दी है। आगे जैसे मेरे और मेरी इस नादान छोरी के सुख के दिन लौटे, ऐसा बदोबस्त तो तू ही करेगा, स्वामी ! जै हो तेरी, हे मेरे परमेश्वर गोल्ल देवता ! दाहिने हो जाना, हो परमेश्वर !"

× × ×

मन्दिर से लौटती हुई, कौशिला नटवरसिंह की दुकान मे रुक गई, कि जाते-जाते, जरा मोतिम दिदी से भेट करती चलूँ। बेकार मे ही बिचारी के लिए कोप पाला मैने। अरे, सद्बुद्धि और दया-ममता वाला खसम मिल जाए, तो उसकी चौडी छाती से सिर टिकाते हुए किस औरत को सुख नही मिलेगा ?